लर्निंग कर्व

हिन्दी अंक I, दिसम्बर 2009

Azim Premji Foundation

अज़ीम प्रेमजी फाउन्डेशन
की पत्रिका

केवल निजी प्रसार के लिए

विज्ञान शिक्षा पर विशेष अंक

सम्पादक की ओर से

लर्निंग कर्व, अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन की पत्रिका है। इसे हमने शिक्षा से सम्बन्धित महत्वपूर्ण मुद्दों पर जानकारी और विचारों नियमित रूप से आपस में बाँटने के उद्देश्य से पाँच वर्ष पहले प्रारम्भ किया था। यह अभी तक अंग्रेज़ी भाषा में प्रकाशित होती रही है। इस अंक से यह अब हिन्दी में भी प्रकाशित होगी। यह योजना भी है कि अब से लर्निंग कर्व का प्रत्येक अंक किसी एक प्रमुख विषय या मुद्दे पर केन्द्रित रहेगा। इस अंक का विषय है 'विज्ञान शिक्षण' । जाहिर है कि यह एक ऐसा विषय है जिसमें हमें उसके अनेक पहलुओं पर विचार करना पड़ेगा। जैसे कि 'विज्ञान शिक्षण क्यों' से लेकर 'विज्ञान को बच्चों के लिए मज़ेदार कैसे बनाएँ' और 'बच्चों को विज्ञान में उच्च शिक्षा हासिल करने के लिए कैसे प्रोत्साहित करें', तथा 'यह कितना ज़रूरी है कि हमारी शिक्षा प्रणाली से वैज्ञानिकों की एक सुदृढ़ धारा निकले'। इन पहलुओं पर एक सार्थक विमर्श कार्यरत वैज्ञानिकों, प्राध्यापकों, स्कूल शिक्षकों और आविष्कारकों के विचार आमंत्रित करके ही किया जा सकता था। हमें खुशी है कि हमारे आग्रह पर ऐसे कई विशिष्ट व्यक्तियों ने उत्साहपूर्वक इस अंक में अपना योगदान दिया है। हम उनके अत्यंत आभारी हैं।

हम अपने बच्चों को मिलने वाली शिक्षा के ढंग में जबर्दस्त बदलाव की कल्पना करते हैं। हम चाहते हैं कि उनका स्कूली जीवन रोचक हो। वह ऐसा हो कि वे कक्षा में सीखी बातों को अपने आसपास की प्रकृति और बृहद जीवन से जोड़ सकें। उनकी कक्षा संसार को देखने के लिए उनका झरोखा बन जाए। वह एक ऐसी जगह हो जहाँ बच्चों की सक्रिय जिज्ञासु प्रवृत्ति और नित्य दिखाई देने वाले आश्चर्यों के बारे में उनकी उत्सुकता को विस्तार और प्रोत्साहन मिले, ताकि उनकी विश्लेषणात्मक क्षमताओं का भरपूर विकास हो। यदि ऐसा परिवेश मिले तो वह किसी भी विषय की पढ़ाई, फिर चाहे वह विज्ञान, गणित या भूगोल कुछ भी हो, शिक्षा के उक्त लक्ष्यों की पूर्ति का साधन बन जाती है। इस सन्दर्भ में हमें यह ज़रूरी लगा कि इन महत्वपूर्ण शैक्षणिक उद्देश्यों और पाठ्यक्रम के लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए लर्निंग कर्व के आगामी अंक भाषा, सामाजिक विज्ञान, गणित आदि विषयों पर केन्द्रित किए जाएँ।

शायद मैं अपना सम्पादकीय यहाँ समाप्त कर देता, पर पिछले दिनों मैं दो ऐसी रोमांचक घटनाओं का साक्षी रहा जिन्होंने इस अंक की सार्थकता को और भी स्पष्टता से रेखांकित कर दिया। रात के 11 बजे थे। मैं हवाई यात्रा से वापस आ रहा था। मेरी उड़ान तीन घंटे देर से पहुँची थी। विमान पट्टी से बाहर ला रही बस आराम से चल रही थी। हम ऊँघते हुए मुश्किल से आँखें खुली रख पा रहे थे। पर एक छोटी बच्ची–सिमरन–पूरी तरह जागी हुई, खिड़की के शीशे पर अपनी नाक सटाए विमान पट्टी की हर चीज़ को ध्यान से देख रही थी। वह अपने उनींदे पिता से धाराप्रवाह सवाल पूछे जा रही थी। इनमें से कुछ यहाँ पेश हैं : 'हे भगवान, इतने बड़े जहाज़। ये ज़रूर बहुत भारी होंगे। फिर ये उड़ते कैसे हैं? मैं तो कितनी छोटी और हल्की हूँ, पर मैं क्यों नहीं उड़ पाती?' फिर क्षण भर बाद : 'ये छोटे–छोटे टायर टूटते नहीं? अगर इनका वजन करेंगे तो तौलनेवाली मशीन ही टूट जाएगी!', और फिर : 'इतना बड़ा जहाज़ बनाने में कितना समय लगा होगा?' पिता को इस बात का श्रेय देना होगा कि उन्होंने उसके प्रश्नों की धारा को अबाध बहने दिया। हालाँकि उन्होंने किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। दूसरी घटना एक बड़े वैवाहिक भवन में लगभग सात–आठ साल के दो लड़कों के सवालों से जुड़ी है। उनकी माँ पास में बैठी हुई थी। वे एक–दूसरे पर सवाल दागे जा रहे थे। 'ऊपर का पंखा देखो। घूमते समय यह एक बड़ी थाली जैसा क्यों दिखता है? तब मैं इसकी पंखियाँ क्यों नहीं गिन पाता?' इसी बीच दूसरे बच्चे का ध्यान पास में फर्श की कत्थई रंग की टाइलों को पोंछ रहे एक व्यक्ति की तरफ गया। उसने पूछा : 'पोंछे का गीला कपड़ा गहरा नीला क्यों दिखता है, जबकि सूखा रहने पर वही कपड़ा हल्का नीला दिखता है? पर टाइल चाहे सूखी हो चाहे गीली, एक ही रंग की दिखती है! क्यों?'

मैं उनके सवालों से अचम्भित भी था और खुश भी। क्या हमारी यह ज़िम्मेदारी नहीं है कि हम अपने बच्चों को ऐसी शिक्षा दें जो उन्हें खोज की इस यात्रा पर निरन्तर आगे ले जाए? लर्निंग कर्व का यह अंक इसी प्रश्न की व्यापक चर्चा का प्रयास करता है। इस बारे में अपने विचार और प्रतिक्रियाएँ हमें ज़रूर लिखें।

एस. गिरिधर, कार्यक्रम तथा एडवोकेसी प्रमुख, अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन

विषय सूची

क्रं.	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ क्रं.
व्यापक मुद्दे			
1.	एनसीएफ के तरीके से विज्ञान सीखना	*इन्दु प्रसाद*	3
2.	ज्वलंत प्रश्न और उनमें छिपी ज्ञान की लौ	*कृष्णन बालसुब्रह्मण्यम*	6
3.	वैज्ञानिक सोच का विकास	*दिलीप रांजेकर*	10
कक्षा के भीतर			
4.	कुछ करके देखें, कुछ बना के देखें	*अरविन्द गुप्ता*	13
5.	विज्ञान की कक्षा में बच्चों की आवाज़	*ज्योत्सना वीजापुरकर*	15
6.	साकार से निराकार की ओर	*जी.एस.जयदेव*	17
7.	कक्षा में प्रयोगशाला : मन में आविष्कारी सोच	*नीरजा राघवन*	19
8.	विज्ञान को रोचक कैसे बनाएँ	*यास्मीन जयतीर्थ*	23
9.	विज्ञान में मूल्यांकन की क्षमता	*विष्णु अग्निहोत्री, निश्चल शुक्ला, अपूर्व भण्डारी*	27
शिक्षक की अहम भूमिका			
10.	विकासशील शिक्षक	*कमल महेन्दू*	31
11.	स्कूली शिक्षक : परिवर्तन के वाहक	*विजय वर्मा*	34
विज्ञान का इतिहास			
12.	समय के झरोखे से विज्ञान की यात्रा	*नन्दिता नारायणसामी*	36
13.	वैज्ञानिक भी गलती करते हैं	*नीरजा राघवन*	39
मैंने विज्ञान क्यों चुना			
14.	समझने की तलाश	*ऊषा पोनप्पन*	40
15.	मुझे रसायन शास्त्र से प्यार क्यों है?	*नीरजा राघवन*	44
एक मिसाल का अध्ययन			
16.	शिक्षा जनान्दोलन की ओर – तमिलनाडु साइन्स फोरम (टीएनएसएफ) और स्कूली शिक्षा	*टी.वी.वेंकटेश्वरन्*	45
फाउण्डेशन का अनुभव			
17.	विज्ञान उत्सव : विज्ञान मेला	*उमाशंकर पेरियोडी*	49
शिक्षकों के लिए संसाधन सामग्री			
18.	कुछ सन्दर्भ किताबें जो विज्ञान को मज़ेदार बनाती हैं		52
19.	प्राथमिक और माध्यमिक स्कूल के विज्ञान के लिए उपयुक्त वैबसाइट्स और ई-संसाधन		53
20.	विज्ञान की गतिविधियों और खेलों वाली कुछ किताबें		56
21.	विज्ञान शिक्षण में सक्रिय कुछ महत्वपूर्ण संगठन		58
पुस्तक समीक्षा			
22.	''श्योरली यू आर जोकिंग, मि. फाइनमैन!'' रिचर्ड पी. फाइनमैन	*नीरजा राघवन*	60
23.	स्मॉल साइन्स सीरीज़ – एचबीसीएसई	*उमा हरिकुमार*	62

यह अंक लर्निंग कर्व (अंग्रेज़ी) अप्रैल, 2009 पर आधारित है। अंग्रेज़ी से हिन्दी में अनुवादक हैं –
सत्येन्द्र त्रिपाठी **sktripathi5@gmail.com,** *डॉ. मनीषा शर्मा* **drmanisha11@gmail.com** एवं *भरत त्रिपाठी* **bharattripathi18@gmail.com** ।

हिन्दी अंक का सम्पादन अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन द्वारा संचालित टीचर्स ऑफ इण्डिया पोर्टल के टीम सदस्य *राजेश उत्साही* **utsahi@azimpremjifoundation.org** ने किया है।

व्यापक मुद्दे

एनसीएफ के तरीके से विज्ञान सीखना

इन्दु प्रसाद

एनसीएफ यानी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा के अनुसार: *'आदिकाल से प्रकृति के विस्मय से अभिभूत मनुष्य की महत्वपूर्ण प्रतिक्रिया रही है–अपने भौतिक और जैविक पर्यावरण का ध्यान से निरीक्षण करना, उनमें अर्थपूर्ण संयोजनों (पैटर्न्स) और सम्बन्धों को खोजना, प्रकृति से काम लेने के लिए औजार बनाना, और संसार को समझने के लिए अवधारणाएँ गढ़ना। इन्हीं मानवीय प्रयासों की परिणति आधुनिक विज्ञान में हुई है।'*

विज्ञान शिक्षण का उदारवादी दृष्टिकोण इस विश्वास पर आधारित है कि विज्ञान की शिक्षा के साथ–साथ विज्ञान के बारे में भी जानना ज़रूरी है। विज्ञान के शिक्षकों को उस विषय के इतिहास और प्रकृति का भी कुछ ज्ञान होना चाहिए जो वे पढ़ा रहे हैं। विज्ञान को इतिहास और दर्शन के बोध से सम्पन्न दृष्टि से पढ़ाया जाना विद्यार्थियों में प्रकृति की समझ को जन्म देता है। उन्हें प्रकृति और विज्ञान के सौन्दर्य का रस लेना सिखाता है। उनमें वैज्ञानिक जानकारी और क्रियाकलाप से उजागर होने वाले नीतिगत मुद्दों के प्रति चेतना जगाता है।

एनसीएफ ने भारत में मौजूदा विज्ञान शिक्षण के जटिल परिदृश्य में स्पष्ट दिखाई देने वाले तीन महत्वपूर्ण मुद्दों को चिन्हित किया है:

- संविधान में घोषित समता और समानता का लक्ष्य हासिल करने के लिए विज्ञान शिक्षण को अभी लम्बी दूरी तय करना है।
- विज्ञान शिक्षण, अच्छी से अच्छी स्थितियों में भी, एक प्रकार की कुशलता तो विकसित करता है, परन्तु अनुसंधान करने और नया रचने की वृत्तियों को प्रोत्साहित नहीं करता।
- विज्ञान शिक्षण की अधिकांश – या शायद सभी – समस्याओं की जड़ उस पर हावी परीक्षा प्रणाली है।

एनसीएफ के अनुसार, विज्ञान शिक्षण से सीखने वाला इस काबिल बनना चाहिए कि:

- जैसे–जैसे संसार को पहचानने की उसकी क्षमता बढ़े, वैसे–वैसे वह उससे जुड़े वैज्ञानिक तथ्यों और सिद्धान्तों को भी जाने और उनके विभिन्न उपयोगों से भी परिचित हो।
- वह ऐसा कौशल हासिल कर सके और उन विधियों तथा प्रक्रियाओं को समझ सके, जिनके उपयोग से वैज्ञानिक ज्ञान का जन्म होता है और उसकी सत्यता की पुष्टि भी होती है।
- उसमें विज्ञान की ऐतिहासिक और विकासपरक दृष्टि का विकास हो, और वह विज्ञान को एक सामाजिक अभिक्रम की तरह देख सके।
- वह पूरे परिवेश (प्राकृतिक पर्यावरण, कृत्रिम रचनाओं और लोग) से जुड़ाव महसूस कर सके। इस परिवेश की समझ केवल स्थानीय न होकर वैश्विक हो। ताकि वह विज्ञान, तकनीक और समाज के संगम से उपजने वाले मुद्दों का महत्व समझ सके।
- वह संसार के कर्मक्षेत्र में उतर सकने के लिए ज़रूरी सैद्धान्तिक ज्ञान और व्यावहारिक तकनीकी कौशल हासिल कर ले।
- उसकी सहज जिज्ञासा, सौन्दर्यबोध और रचनात्मकता को पोषण मिले।
- वह ईमानदारी, निष्ठा, सहभागिता तथा जीवन और पर्यावरण की फिक्र जैसे मूल्यों को आत्मसात कर सके।
- उसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित हो, अर्थात उसकी दृष्टि तटस्थ और तथ्यात्मक हो, उसकी सोच स्वतंत्र हो। वह स्वयं भय और पूर्वाग्रहों से मुक्त हो।

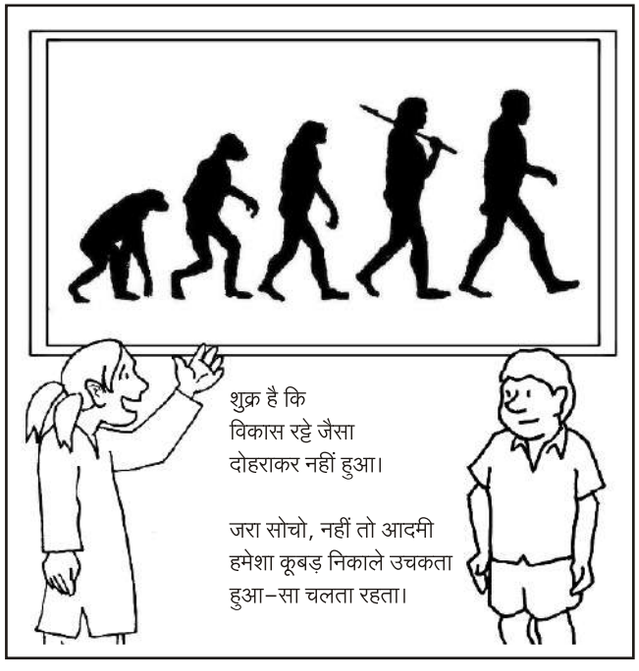

एनसीएफ–2005 में दिए गए वर्णन के अनुसार, वैज्ञानिक पद्धति आपस में सम्बन्धित कई गतिविधियों को मिलाकर बनती है। जैसे कि: निरीक्षण, देखे गए तथ्यों में समानताओं और समरूपी संरचनाओं की खोज करना,

सवाल पूछना

स्कूल जाने वाला हर बच्चा यह बात सीखता है कि हवा हर जगह है। हो सकता है कि विद्यार्थी यह जानते हों कि पृथ्वी के वायुमण्डल में कई गैसें होती हैं, या कि चाँद पर हवा नहीं है। इससे हम खुश हो सकते हैं कि उन्हें विज्ञान का कुछ ज्ञान है। पर जरा कक्षा 4 में हुए इस वार्तालाप पर भी गौर करें:

शिक्षिका: क्या इस ग्लास में हवा है?

विद्यार्थी (एक साथ): हाँ।

शिक्षिका इस सामान्य वक्तव्य, कि 'हवा हर जगह है', से संतुष्ट नहीं थी। उसने विद्यार्थियों से इस विचार का उपयोग एक सरल परिस्थिति को समझने के लिए करने को कहा। शिक्षिका ने अप्रत्याशित रूप से पाया कि उन्होंने कुछ 'वैकल्पिक अवधारणाएँ' गढ़ ली थीं।

शिक्षिका: अब मैं गिलास को उल्टा कर देती हूँ। क्या अभी भी इसमें हवा है?

उत्तर में कुछ बच्चों ने 'हाँ' कहा, कुछ ने 'नहीं' कहा, और कुछ ऐसे भी थे जो तय नहीं कर सके।

एक विद्यार्थी: हवा तो गिलास से बाहर निकल गई!

दूसरा विद्यार्थी: गिलास में कोई हवा नहीं थी।

दरअसल कक्षा 2 में शिक्षिका ने एक जलती हुई मोमबत्ती के ऊपर एक खाली गिलास उलटाकर रखा था और मोमबत्ती बुझ गई थी। विद्यार्थी इस गतिविधि के साझेदार बने थे और उसकी स्मृति दो साल बाद भी उनके मन में सजीव थी। परन्तु उनमें से कुछ ऐसे थे जिन्होंने इससे गलत निष्कर्ष निकाल लिया था।

कुछ समझाने के बाद, शिक्षिका ने विद्यार्थियों से आगे प्रश्न किए: क्या इस बन्द अलमारी में हवा है? क्या मिट्टी में हवा है? पानी में? हमारे शरीर में? हमारी हड्डियों के भीतर? इनमें से हर प्रश्न के उत्तर में नए विचार आए और कुछ भ्रांतियों को दूर करने का अवसर मिला। इस पाठ में कक्षा को यह सन्देश भी मिला: वक्तव्यों को बिना विचारे मत स्वीकार करो। प्रश्न पूछो। हो सकता है तुम्हें सभी उत्तर न मिलें, पर तुम कुछ नया सीखोगे।

(एनसीएफ 2005 से)

अवधारणाएँ बनाना, स्थितियों के गुणात्मक और गणितीय प्रारूप गढ़ना, तार्किक ढंग से उनके निष्कर्ष निकालना, और प्रेक्षणों तथा नियंत्रित प्रयोगों के द्वारा सिद्धान्तों के सच-झूठ होने की पुष्टि करना, और इस तरह अन्त में प्राकृतिक संसार पर लागू होने वाले सिद्धान्तों, धारणाओं तथा नियमों पर पहुँचना। विज्ञान के नियम अचल शाश्वत सत्यों की तरह नहीं देखे जाने चाहिए। यहाँ तक कि, सर्वाधिक स्थापित और सार्वभौमिक वैज्ञानिक नियम भी तात्कालिक ही माने जाने चाहिए जो नए प्रेक्षणों, प्रयोगों और विश्लेषणों की रोशनी में संशोधित किए जा सकते हैं।

एनसीएफ में पाठ्यक्रम को सीखने के विभिन्न चरणों के अनुरूप बनाया गया है। प्राथमिक स्तर पर जोर इस बात पर दिया गया है कि संसार (प्राकृतिक परिवेश, कृत्रिम रचनाएँ और लोग) के प्रति बच्चे के कौतूहल को बढ़ावा मिले। संसार को पहचानने की उसकी बुनियादी क्षमताओं – जैसे निरीक्षण करना, वर्गीकरण करना और निष्कर्ष निकालना आदि के साथ-साथ उसमें अपने हाथ जैसे अंगों से काम लेने के कौशल का भी विकास हो। बच्चों के लिए विज्ञान की 'भाषा' सीखना भी महत्वपूर्ण है। एनसीएफ का सुझाव है कि विज्ञान और सामाजिक विज्ञान को मिलाकर अधिक व्यापक 'पर्यावरण-अध्ययन' विकसित करने का प्रयास जारी रहना चाहिए। इसका एक अन्य महत्वपूर्ण हिस्सा स्वास्थ्य भी हो।

उच्च प्राथमिक कक्षाओं के स्तर पर, बच्चे को इस प्रयास में संलग्न किया जाना चाहिए कि वह अपने परिचित अनुभवों के माध्यम से विज्ञान के सिद्धान्तों को समझे। साथ ही खुद अपने हाथों से छोटी-छोटी तकनीकी इकाइयों और मॉड्यूलों की रचना करे। उदाहरण के लिए वज़न उठाने के लिए पवनचक्की के एक कारगर मॉडल की कल्पना करके, उसका निर्माण करना। दूसरी ओर उसके पर्यावरण और स्वास्थ्य-सम्बन्धी ज्ञान का विस्तार भी जारी रहे। जिसमें गतिविधियों और सर्वेक्षणों के माध्यम से प्रजनन और यौन-स्वास्थ्य सम्बन्धी शिक्षा शामिल हो। विज्ञान की अवधारणाओं तक मुख्य रूप से गतिविधियों और प्रयोगों के मार्ग से पहुँचना चाहिए। इस स्तर की विज्ञान सामग्री और विषय को माध्यमिक विज्ञान के हल्के रूप की तरह नहीं देखा जाना चाहिए। सामूहिक गतिविधि, साथियों और शिक्षकों से चर्चा, सर्वेक्षण, आँकड़ों को व्यवस्थित ढंग से एकत्रित करना और उन्हें प्रदर्शनियों आदि के माध्यम से स्कूलों और मौहल्लों में दिखाना – ये सभी शिक्षण प्रक्रिया के महत्वपूर्ण अंग होना चाहिए।

माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों को विज्ञान एक मिले-जुले अध्ययन क्षेत्र के रूप में सिखाया जाना चाहिए। यहाँ भी वे अपने हाथों से ऐसे

विद्यार्थी कितना जीव विज्ञान जानते हैं?

'ये विद्यार्थी विज्ञान नहीं समझते। वे अच्छी शिक्षा से वंचित पृष्ठभूमि से आए हैं'। ग्रामीण या जनजातीय पृष्ठभूमियों से आए बच्चों के बारे में हम अक्सर लोगों को ऐसी राय व्यक्त करते हुए सुनते हैं। पर जरा विचार करें कि ये बच्चे अपने रोज़मर्रा के अनुभवों से कितना जानते हैं।

जनाबाई, सहयाद्रि की पहाड़ियों में स्थित एक छोटे–से गाँव में रहती है। वह धान और तुअर की मौसमी खेती करने के कार्य में अपने माता–पिता की मदद करती है। कभी–कभी वह बकरियों को चराने ले जा रहे अपने भाई के साथ जाती है। वह अपनी छोटी बहन के लालन–पालन में भी मदद करती है।

आजकल वह रोज आठ किमी पैदल चलकर सबसे पास वाले माध्यमिक स्कूल में पढ़ने जाती है। जनाबाई अपने पर्यावरण से घनिष्ठ सम्बन्ध बनाए रखती है। भोजन, दवा, ईंधन, रंग और आवास बनाने की सामग्री के स्रोतों के रूप में उसने भिन्न–भिन्न पौधों का उपयोग किया है। उसने विभिन्न पौधों के अंशों को कई घरेलू उद्देश्यों के लिए, जैसे कि धार्मिक अनुष्ठानों में या त्यौहार मनाने में, इस्तेमाल होते देखा है। वह पेड़ों के बारीक भेदों को पहचानती है और ऋतुओं के अनुसार उनकी पत्तियों और फूलों के स्वरूप, आकार, उनकी सघनता या विरलता, उनकी गंध और स्पर्श में होने वाले परिवर्तनों को देखती रहती है। वह अपने आसपास के लगभग सौ भिन्न–भिन्न प्रकार के पौधों को पहचान सकती है, जो जीवविज्ञान के उसके शिक्षक की क्षमता से कई गुना है – वही शिक्षक जो मानते हैं कि जनाबाई कमज़ोर छात्रा है।

क्या हम जनाबाई के समृद्ध ज्ञान को जीवविज्ञान की शास्त्रीय अवधारणाओं में बदलने में उसकी मदद कर सकते हैं? क्या हम उसे भरोसा दिला सकते हैं कि स्कूल का जीवविज्ञान, कठिन भाषा के लम्बे–लम्बे पाठों में छिपे हुए किसी अमूर्त संसार के बारे में नहीं है। बल्कि यह उस खेत के बारे में है जहाँ वह काम करती है; उन परिचित पशुओं के बारे में है जिनकी वह देखभाल करती है; उस जंगल के बारे में है जिससे होकर वह रोज गुजरती है। केवल तभी वह सचमुच में विज्ञान सीखेगी।

(एनसीएफ 2005 से)

उपकरण और तकनीकी सरंचनाएँ (मॉड्यूल्स) बनाते हुए सीखें जो उच्च प्राथमिक स्तर से अधिक विकसित हों। इसके अलावा प्रजनन और यौन–स्वास्थ्य सहित, पर्यावरण और स्वास्थ्य सम्बन्धी मुद्दों से जुड़ी गतिविधियाँ और इन मुद्दों का विश्लेषण भी उसकी शिक्षा का अंग होना चाहिए। यह भी महत्वपूर्ण है कि वह व्यवस्थित प्रयोगों के माध्यम से सैद्धान्तिक अवधारणाओं को जान सके और उनका सत्यापन कर सके। साथ ही विज्ञान और तकनीक पर आधारित स्थानीय महत्व की छोटी–छोटी परियोजनाओं पर काम कर सके।

एनसीएफ की सिफारिश है कि पाठ्यक्रम के बोझ को सुसंगत बनाया जाना चाहिए और विषय के ढेर सारे पहलुओं को सतही ढंग से पढ़ा देने की प्रवृत्ति से बचना चाहिए। एनसीएफ की दृष्टि से शिक्षकों के सशक्तीकरण और परीक्षा–व्यवस्था में सुधारों के द्वारा ही विज्ञान के पढ़ाने और पढ़ने में बुनियादी बदलाव लाया जा सकता है। इस सन्दर्भ में, यह दस्तावेज, अभी प्रचलित नाना प्रकार की प्रवेश परीक्षाओं के स्थान पर, एक राष्ट्रीय परीक्षा सेवा की बात करता है।

एनसीएफ की एक अत्यंत रोचक सिफारिश है कि विज्ञान सम्बन्धी गतिविधियों का बाल विज्ञान सम्मेलन की तर्ज पर विस्तार किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय स्तर पर बड़े विज्ञान तथा तकनीकी मेलों का आयोजन किया जाना चाहिए। इनमें कस्बे, जिले और राज्य स्तर पर आयोजित ऐसे छोटे मेलों से भेजी गई प्रविष्टियाँ शामिल हों।

एनसीएफ इस तथ्य से परिचित है कि सभी बच्चे बड़े होकर वैज्ञानिक या तकनीकी विशेषज्ञ नहीं बनते। परन्तु वर्तमान समाज के सामाजिक, राजनैतिक और नीतिगत मुद्दों को बेहतर ढंग से समझने के लिए सभी का वैज्ञानिक दृष्टि से साक्षर होना आवश्यक है। यह दस्तावेज विद्यार्थियों में विज्ञान, तकनीक और समाज के परस्पर सम्बन्ध की समझ विकसित करने के महत्व को भी स्वीकार करता है, ताकि वे एक ओर पर्यावरण और स्वास्थ्य जैसे मुद्दों के प्रति संवेदनशील बनें, और दूसरी ओर संसार के कर्मक्षेत्र में प्रवेश करने के लिए उपयुक्त व्यावहारिक ज्ञान तथा कौशल हासिल कर सकें।

इन्दु प्रसाद, अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, बंगलौर में ऐकेडमिक और पैडागॉजी समूह की प्रमुख हैं। इसके पहले वे पन्द्रह वर्ष से भी अधिक समय तक कर्नाटक और तमिलनाडु में विशेष/समाहित शिक्षा की शिक्षिका रही हैं। उन्होंने खासतौर से विभिन्न स्नायुविक चुनौतियों से जूझ रहे बच्चों के साथ काम किया है। उनसे इस पते पर सम्पर्क किया जा सकता है : indu@azimpremjifoundation.org

ज्वलंत प्रश्न और उनमें छिपी ज्ञान की लौ

कृष्णन बालसुब्रह्मण्यम

प्राथमिक स्कूलों से लेकर हाई स्कूलों तक विज्ञान और गणित की शिक्षा का वर्तमान स्तर दयनीय है। ऐसा कुछ हद तक उत्साहहीन शिक्षण के कारण हुआ है। इससे कुछ विद्यार्थियों में इन विषयों के लिए अरुचि पैदा हो रही है। कुछ अन्य विद्यार्थी विश्वविद्यालय की डिग्री प्राप्त करने के पहले ही अधिक लाभकारी कामों जैसे कॉल सेंटरों की नौकरियों की ओर आकर्षित हो रहे हैं। वे विद्यार्थी भी जो विज्ञान में अपना भविष्य बना सकते हैं वे नीरस शिक्षण शैली की वजह से या वैकल्पिक कैरियर क्षेत्रों की प्रचलित भ्रांतियों की वजह से विज्ञान से दूसरी ओर मुड़ रहे हैं। यह चिन्ताजनक है कि इन सभी बातों की वजह से विद्यार्थी विज्ञान और नए रचनात्मक शोध कार्यों को चुनने के बजाय उनसे दूर जा रहे हैं।

हमारी विज्ञान और गणित की शिक्षा में क्या गलत है? विज्ञान और गणित के बुनियादी आधार के बिना क्या विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अत्याधुनिक नए परिवर्तन लाना सम्भव है? नई वैज्ञानिक खोजों और प्रौद्योगिक परिवर्तनों के बारे में युवाओं के मन में रोमांच बनाए रखने के लिए हम क्या कर सकते हैं? बेशक़ ये बहुत ही जटिल और उलझा देने वाले सवाल हैं। इनके उत्तर आसान नहीं हैं। एक तरीका यह है कि वैज्ञानिकों से पूछें कि उन्हें किस बात ने विज्ञान और शोधकार्य का मार्ग अपनाने के लिए उत्साहित किया। देखें कि उनमें रोमांच जगाने वाले कुछ कारणों को पाठ्यक्रम में कैसे शामिल किया जा सकता है। ताकि शुरुआती अवस्था से ही युवाओं में विज्ञान के प्रति रुचि जगाई जा सके। कई प्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने शोध कार्य की अपनी प्रेरणाओं को अक्सर दिमाग को झकझोर देने वाले किसी सवाल के ज़रिये पाया है। इस सवाल का जब तक उन्होंने जवाब नहीं ढूँढ़ लिया तब तक वे चैन से नहीं बैठ सके। जैसे कि वे किसी बात के लिए दीवाने हों। इससे हमें भुलक्कड़ प्रोफेसर वाली प्रसिद्ध धारणा समझ में आ सकती है। बेशक इसका मतलब यह नहीं है कि ऐसे प्रोफेसर का दिमाग़ 'नदारद' होता है, बल्कि प्रोफेसर का ध्यान और दिमागी ऊर्जा सवाल पर और उसके उत्तर की तलाश पर इस तरह केन्द्रित हो जाती है कि वे अपने इर्द-गिर्द की चीज़ों को भूल जाते हैं। वे आसपास हो रही घटनाओं से अनजान बने रहते हैं। विज्ञान और शोध एक तरह की दीवानगी है। यह अथक ऊर्जावाली ऐसी चाहत है जो अज्ञात जगत से उत्तर पाने की खोज में सतत लगी रहती है। जब तक उत्तर ना मिल जाए तब तक यह दीवानगी बनी रहती है। जब तक हम अपने युवाओं में ऐसी दीवानगी की हद तक जोश पैदा नहीं कर देते तब तक हम अक्सर बहुत ही सृजनशील दिमागों से वंचित होते रहेंगे। नोबेल पुरस्कार विजेता रिचर्ड फाइनमैन, अलबर्ट आइंस्टाइन, सी.वी.रमण, एस.चंद्रशेखर जैसे कई अन्य वैज्ञानिकों में प्रकृति के सौन्दर्य को समझने की अतृप्त प्यास रही है। वे प्रश्नों के द्वारा यह जानने को आकुल रहे हैं कि प्रकृति में चीज़ें वैसी क्यों हैं जैसी कि वे हैं। आइंस्टाइन का प्रसिद्ध कथन है कि *ज्ञान से कहीं अधिक महत्वपूर्ण कल्पना है।* यदि रमन ने यह सवाल नहीं पूछा होता कि *क्यों किसी साफ दिन आकाश और समुद्र का रंग एक जैसा नीला होता है,* तो हमें नोबेल पुरस्कार जीतनेवाले रमन प्रभाव और रमन स्पेक्ट्रोस्कोपी के बारे में पता नहीं होता। आइंस्टाइन के शिक्षक का कहना था कि चलती हुई ट्रेन से आ रही रोशनी की किरण की चाल रुकी हुई ट्रेन से आ रही रोशनी की किरण की चाल से भिन्न होगी। जब आइंस्टाइन ने इसके कारण का ठीक समाधान नहीं पाया तो संतोषजनक जवाब की उनकी तलाश ने सापेक्षता के सिद्धान्त को जन्म दिया। प्रकृति के उस पहलू को, जिसे हम उसका सौन्दर्य कहते हैं, समझने की कल्पनाशक्ति ही विज्ञान में बड़े आविष्कारों की ओर ले जाती है। इसलिए हमारे विद्यार्थियों में कल्पनाशक्ति और उत्तरों की खोज करने की चाह को जगाना बेहद महत्वपूर्ण है।

किसी विद्यार्थी को विज्ञान और शोध की राह पर जाने के लिए क्या चीज़ उत्साहित करेगी। यह सवाल मैंने खुद से पूछा। जवाब में यहाँ मैंने ऐसे कुछ बहुत ही रोमांचक व्यक्तिगत उदाहरणों और किस्सों को दर्ज करने की कोशिश की है जिन्होंने मुझे विज्ञान की ओर आकर्षित किया। मेरे मन में विज्ञान के प्रति रोमांच सबसे पहले एक विज्ञान मेले से जागा। इसे मेरी बहन और उसके मित्रों ने पच्चैयप्पा कॉलेज, चैन्ने में आयोजित किया था। तब मैं लगभग तेरह साल का था। वहाँ एक व्यक्ति ने एक अन्धेरे कमरे में दो रसायनों को मिलाया और पूरा कमरा नीले रंग की आभा से जगमगा उठा। मुझे याद है कि मैं यह समझने की कोशिश कर रहा था कि इन दोनों रसायनों ने इस सुन्दर चमकते हुए नीले रंग को क्यों पैदा किया। ऐसे ही एक दिन मैंने अपनी माँ को हल्दी के पानी को सफ़ेद चूने (तमिल में इसे सुनांबु कहते हैं, अंग्रेज़ी में क्विकलाइम/व्हाइट वॉश) के साथ मिलाते हुए देखा। पानी का पीला घोल उसी क्षण रक्त की तरह लाल हो गया। हिन्दुओं के कई समारोहों में होने वाली पारम्परिक प्रथाओं में से एक है आरती करना। आरती के थाल में हल्दी के पीले घोल को सफेद क्षारीय चूने जैसे पदार्थ (जो मुख्य रूप से कैल्शियम हाइड्रोक्साइड से बना होता है) के साथ मिलाया जाता है। हल्दी का ये पीला रंग तब लाल रंग में क्यों बदल जाता है? इस सवाल ने ही विज्ञान में मेरी

प्रारम्भिक रुचि जगाई। इस सवाल का जवाब ढूँढ़ने की चाह मुझे प्रकृति के सौन्दर्य को समझने के मार्ग पर ले गई। हाल ही में हमने कई प्रकार के घरेलू रसायनों को हल्दी के साथ मिला कर रंगों का कैलाइडोस्कोप (बहुरंग-समूह) बनाने की कोशिश की है। इन्हें चित्र 1 में दिखाया गया है।

चित्र 1- हल्दी का सामान्य घोल (बीच में), और चारों ओर उस घोल के विभिन्न रसायनों के साथ मिला कर बने अलग-अलग रंग; (घड़ी की दिशा में) पीला (सिरका), क्रिक लाइम या चूना(कैल्शियम हाइड्रक्साइड), अमोनिया, बाल और ग्रीस रिमूवर और ओवन क्लीनर.

बेशक यह सवाल मुझे उस वैज्ञानिक मार्ग पर ले गया जो क्वांटम मैकेनिक्स और स्पेक्ट्रोस्कोपी पर जाकर खत्म होता है। पर सच तो यह है कि यही वो सवाल था जिसने मेरी कभी न खत्म होने वाली ज्ञान की खोज और नई शोधों की यात्रा को जन्म दिया। पुरानी बातों पर सोचता हूँ तो मुझे लगता है कि जवाब की तुलना में वह सवाल कहीं ज़्यादा महत्वपूर्ण था। वह सवाल और उससे जन्मी कभी न खत्म होने वाली तलाश, या जवाब ढूँढ़ने की दीवानगी, ही मुझे विज्ञान और वैज्ञानिक शोध की ओर ले गई। बुनियादी सवालों के उत्तर खोजना ही आविष्कारों की ओर ले जाने वाला सबसे महत्वपूर्ण मार्ग है। भले ही सवाल कितने ही आसान या कितने ही कठिन क्यों न हों।

एक दिन मेरी माँ ने मैसूर पाक बनाया, एक अन्य दिन रसगुल्ला । इसके लिए जब उन्होंने दूध में नीबू का रस डाला तो मैंने देखा कि दूध फटकर ठोस अवस्था में आ रहा था। ऐसा क्यों है कि नीबू का रस मिलाते ही दूध ठोस और द्रव दो अलग-अलग अवस्था में बँट जाता है? यहाँ भी फिर से, सवाल पूछना मेरे लिए विज्ञान की खोज की कुंजी था। क्या नीबू में मौजूद अम्ल ही इसके लिए ज़िम्मेदार है या कोई अन्य पदार्थ इसका कारण है? दूध की अवस्था वाकई में क्या है? क्या इस तरह का सवाल किसी को हाइड्रोजन बॉन्डिंग और प्रोटीन की रचना को समझने के मार्ग पर ले जा सकता है? लेकिन सवालों को पूछना महत्वपूर्ण है, भले ही उत्तर स्पष्ट हों या नहीं। इसी तरह मैंने अक्सर पूछा कि ऐसा क्यों है कि अधिकतर पदार्थ तो गर्म करने पर ठोस से द्रव में बदलते हैं लेकिन अण्डे को उबालने पर उसकी ज़रदी (योक) द्रव से ठोस में बदलती है? पुन: उत्तर यह है कि यह हाइड्रोजन बांडों के टूटने के कारण होता है, जिसके परिणामस्वरूप अण्डे के योक में प्रोटीन विकृत अवस्था में आ जाते हैं। पर यह उत्तर इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि सवाल। यह तो प्रश्न ही थे जिन्होंने मुझे विज्ञान की ओर आकर्षित किया और उससे बाँधे रखा। मिठाइयाँ बनाने के दौरान अक्सर ठोस चीनी को पानी के साथ मिला कर गर्म किया जाता है। इससे घोल अलग-अलग अवस्थाओं में बदल जाता है। तार वाली अवस्था (तमिल में कांबी पागू) या गोलाकार बून्दों जैसी अवस्था (तमिल में उरुंडुई पागू)। यह इस पर निर्भर करता है कि किस प्रकार की मिठाई बनाई जा रही है। यदि कोई इन अवलोकनों पर और इस तरह के घोल की भिन्न अवस्थाओं पर आधारित प्रश्न पूछे तो वह पदार्थ की अवस्थाओं के फेज़ डायग्रामों के संसार की सैर पर निकल पड़ेगा! हमारे चारों ओर ऐसा कितना कुछ होता है जिसे हम स्वाभाविक मानकर उसके प्रति उदासीन बने रहते हैं। सच तो यह है कि हमें उसके बारे में रुक कर सोचने का कभी मौका ही नहीं मिलता।

मैं जितने ज़्यादा प्रश्न पूछता गया विज्ञान में मेरी रुचि उतनी ही बढ़ती गई। मेरी यह रुचि अक्सर मेरे स्कूल के शिक्षकों के लिए चुनौती खड़ी कर देती थी। मैं जो उलझे हुए सवाल पूछता था उनसे उन्हें भय लगता। वे मुझसे त्रस्त हो गए थे। रसायन शास्त्र की एक कक्षा में मुझे एक रासायनिक समीकरण को संतुलित करने के लिए कहा गया। इसमें विभिन्न रसायनों के आगे ऐसे गुणक लगाए जाते हैं जिनसे क्रिया के समीकरण के दोनों तरफ अलग-अलग परमाणुओं की कुल संख्या समान हो जाती है। लेकिन उस थोड़े जटिल से समीकरण के लिए मैं दो ऐसे भिन्न हलों पर पहुँचा जिनमें एक हल दूसरे का गुणज नहीं था। यहाँ मैं, उन लोगों के लिए जो उस क्रिया को जानने के लिए उत्सुक हों, बता दूँ कि वह क्रिया $KCLO_4$ और HCL के बीच थी। हमें सिखाया गया था कि किसी रासायनिक प्रतिक्रिया को संतुलित करने का एक ही खास हल होता है, नहीं तो प्रतिक्रिया करने वाले तत्व एक निश्चित अनुपात में प्रतिक्रिया नहीं करेंगे। शिक्षक से मेरा सवाल यह था कि उन दोनों में से कौन-सा हल सही है? वे चकरा गए और मेरे सवाल का कोई संतोषजनक जवाब नहीं दे सके। अत: मेरी खोज जारी रही। जब मैं पिलानी के बिड़ला इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी एण्ड साइन्स में पढ़ने गया तो वहाँ भी रसायन शास्त्र के शिक्षकों से यही सवाल पूछता रहा। लेकिन संतोषजनक जवाब नहीं पा सका। जब मैंने लीनियर एलजेबरा और मैट्रिक्स सिद्धान्त में कोर्स किया, तब कहीं जाकर मैं रसायनिक प्रतिक्रियाओं को संतुलित करने के अपने सवालों के संतोषजनक जवाब पा सका। बीजगणित के रैंक-नलिटी प्रमेय से निश्चित ही मैं यह साबित कर सका कि $KCLO_4$+ HCL प्रतिक्रिया के लिए मात्र दो स्वतंत्र हल नहीं हैं बल्कि अनगिनत हल हैं। वास्तव में तो यह समझ में आया कि सही हल पाने के लिए या प्रतिक्रिया को अलग-अलग करने के लिए और अधिक रासायनिक जानकारी की, जैसे कि रसायन-उष्मागति की, ज़रूरत होती है। हमारी शिक्षा के साथ परेशानी यह है कि

शिक्षक अक्सर अपने ज्ञान और समझ को संकुचित क्षेत्रों में बाँट देते हैं। जबकि असलियत में वास्तविक संसार की अधिकांश समस्याएँ सभी विषयों से मिले-जुले रूप से जुड़ी रहती हैं। प्रकृति से सम्बन्धित प्रश्नों में खुद यह जानने की ताकत नहीं होती कि वे गणितीय हैं, रासायनिक हैं या जैविक हैं। उदाहरण के लिए फूलों की पंखुड़ियों के नमूने और कैक्टस के काँटें ऐसे गणितीय क्रमों में व्यवस्थित रहते हैं जिन्हें फिबोनेसी संख्या कहते हैं। यहाँ हमें गणित, जीव विज्ञान और उपलब्ध स्थान का सर्वोत्तम उपयोग करने के प्रकृति के अपने विशिष्ट तरीके और इन सबका समन्वय देखने को मिलता है। इसके परिणामस्वरूप फिबोनेसी पैटर्न्स बनते हैं। शिक्षक के नाते अक्सर हमें ऐसी अवधारणाओं की समझ विकसित करने की ज़रूरत होती है जिनका सम्बन्ध एक साथ कई विषयों से होता है। बजाय इसके कि हम ज्ञान को विभिन्न क्षेत्रों में बाँटकर अपने को किसी एक क्षेत्र तक सीमित कर लें।

मैं बिट्स पिलानी का विद्यार्थी था। एक दिन इंस्टीट्यूट के निदेशक डॉक्टर सी.आर.मित्रा ने मुझे और मेरे सहपाठी सुभाष गुप्ता से 'विज्ञान में अवधारणाएँ' विषय पर नए विद्यार्थियों के लिए एक कोर्स बनाने, विकसित करने और पढ़ाने के लिए कहा। यह हमारे लिए चुनौती थी। लेकिन मेरे लिए एक अनूठी पहल थी क्योंकि इससे मुझे पढ़ाने के आनन्द को अनुभव करने का तब मौक़ा मिला जब मैं बिट्स में तीसरे साल का ही छात्र था।

हमने प्रश्नों को उठाकर और फिर उन प्रश्नों के उत्तर खोज कर अवधारणाओं को सीखने के एक नए तरीके पर आधारित एक कोर्स तैयार किया। हालाँकि यह शैली शिक्षक के लिए ख़ासतौर पर चुनौती भरी थी, पर इसके कई फ़ायदे भी थे। कोर्स के एक हिस्से के रूप में हर विद्यार्थी से किसी एक विज्ञान प्रोजेक्ट को करने के लिए कहा गया। इसमें अपने आसपास की किसी चीज़ को 'रुक कर गौर से देखना था' और विज्ञान की अवधारणाओं का उपयोग करते हुए अपने अवलोकनों को समझाना था।

एक रोमांचक प्रोजेक्ट बिट्स के व्यास भवन छात्रावास के बगल के मार्ग पर स्थित पेड़ों के अवलोकन से सम्बन्धित था। सवाल था कि क्यों समय-समय पर किनारे वाले मार्ग पर लगे पेड़ों की छाल से उच्च दबाव से द्रव रिसता था। इसके स्पष्टीकरण में कैपिलरी एक्शन से लेकर हाइड्रोडायनामिक्स तक की अवधारणाओं को लिया गया। लेकिन एक बार फिर यहाँ केवल प्रश्न ही महत्वपूर्ण था। यह प्रश्न किसी भी मार्ग पर ले जा सकता है; वह सरल कैपिलरी एक्शन से लेकर अधिक जटिल हाइड्रोडायनामिक समीकरणों तक हो सकता है। लेकिन यह सवाल ही तो है जो ज्ञान और रोमांच की ओर ले जाता है।

मेरी कक्षा के एक विद्यार्थी संजीव आर. मित्रा ने यूँ ही एक सवाल पूछा: क्यों वॉश बेसिन के सिंक में से जाती हुई पानी की धारा भँवर पैदा करती है। खास कर जब आखिर में बचा थोड़ा-सा पानी सिंक में से जाता है? यह प्रश्न संजीव जैसे नए विद्यार्थी को प्रारम्भिक चरण में ही फ्लुइड डायनेमिक्स और नेवियर स्टोक्स समीकरण के मार्ग पर ले गया। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस कोर्स और प्रयोग ने संजीव के मन में विज्ञान के प्रति रोमांच की एक चिन्गारी को भड़का दिया।

इसका समापन उसके कोलम्बिया विश्वविद्यालय से पीएच.डी. प्राप्त करने और अन्त में उच्च ऊर्जा भौतिकी में शोध करते हुए हॉवर्ड विश्वविद्यालय में भौतिकी के प्रोफ़ेसर का पद पाकर हुआ। इस कोर्स ने संजीव और एक अन्य विद्यार्थी रतननाथ को इतना ज़्यादा आकर्षित किया कि हमने मिलकर उस कोर्स को दोबारा पढ़ाया। तब मैं बिट्स के अपने चौथे साल में था। हमने 700 पृष्ठों की किताब निकाली। इसका शीर्षक था 'विज्ञान में अवधारणाएँ'। हमारी दीवानगी का कोई अन्त नहीं था। हमने बहुत मेहनत से और काफ़ी समय लगाकर, बिना कोई तकलीफ महसूस किए, इस किताब को लिखा। (इस किताब के कुछ हिस्सों को इस लिंक पर देखा जा सकता है: http://www.mcscsuhayward.edu/kbalasub/reprints/1.pdf)

मैं हैदराबाद के इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ कैमिकल टेक्नालॉजी (आईआईसीटी) का नेशनल साइन्स टैलेंट समर स्टुडेंट भी रहा । एक दिन मैं और मेरे मित्र उस्मानिया विश्वविद्यालय के परिसर में घूम रहे थे। परिसर के एक पेड़ से गिरे हुए बीजों को देख कर हमारे मन में कौतूहल पैदा हुआ। बीज का बाहरी खोल कठोर था और बादाम के खोल के जैसा दिखाई दे रहा था। लेकिन वहाँ के स्थानीय लोगों ने हमें चेताया कि बीज खाने योग्य नहीं है। इस बीज का रहस्य जानने की जिज्ञासा से प्रेरित होकर मैंने तमाम सवाल पूछे। परिणामस्वरूप आईआईसीटी का गर्मियों वाला मेरा प्रोजेक्ट उसी बीज से तेल निकालने और उस तेल के विश्लेषण पर आधारित था। वह पोनगामिया पिनाटा का बीज था जिसे आम भाषा में पोंगू का बीज कहते हैं। एक बार फिर, यह बीज से जुड़ा सवाल ही था जो मुझे, विभिन्न तकनीकों का इस्तेमाल करते हुए, प्राकृतिक उत्पादों के रसायन विज्ञान, रासायनिक निष्कर्षण, और उससे निकलने वाले तेल के स्पेक्ट्रोस्कोपिक विश्लेषण पर शोध के एक नए क्षेत्र की ओर ले गया। यह भी पता चला कि इस तेल के कई औषधिगुण होते हैं और इसका इस्तेमाल आयुर्वेदिक दवाओं में भी होता है।

किसी खास सवाल के उत्तर ढूँढ़ने की खोज अक्सर मुझे अलग–अलग विषयों, जैसे गणित से लेकर भौतिकी, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान आदि की ओर ले गई। इस तरह उसने मेरी समझ को केवल एक ही विषय तक सीमित नहीं रहने दिया। हालाँकि मैं रसायनशास्त्र का विद्यार्थी था, फिर भी गणित और रासायनिक आइसोमेरिज्म के बीच के सम्बन्ध को जानने को मेरी रुचि की वजह से मैंने अपना स्नातकोत्तर शोधप्रबन्ध (मास्टर्स थीसिस) प्रोफेसर वी. कृष्णमूर्ति के साथ किया, जो मूलतः गणितज्ञ थे।

कई प्रसिद्ध वैज्ञानिकों और गणितज्ञों की जीवनियाँ स्पष्ट रूप से एक ही मूल सूत्र की ओर इशारा करती हैं। विज्ञान का विकास प्रश्नों को उठाने और फिर उन प्रश्नों के उत्तर खोजने की दीवानगी से ही हुआ है। शिक्षकों को इस आदत को अपनी शिक्षण शैली और पाठ्यक्रम में शामिल करने की कोशिश करना चाहिए। उन्हें विद्यार्थियों को अज्ञात के बारे में प्रश्न पूछने तथा उनके उत्तर ढूँढ़ने में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। साथ ही यह भी महत्वपूर्ण है कि वैज्ञानिक सिद्धान्तों को स्पष्ट करने वाले प्रायोगिक और रोचक प्रदर्शनों को शिक्षण में शामिल किया जाए। किसी चीज़ के सीखने को कहीं अधिक रोचक बनाया जा सकता है यदि शुरू में ही, हम उसे क्यों सीख रहे हैं इसके कारण, उसके विभिन्न उपयोगों, और सम्बन्धों के बारे में बता दें। बजाय इसके कि पाठ्यपुस्तक की सामग्री को समझने के लिए पर्याप्त रुचि जगाए बिना उसे सीधे–सीधे प्रस्तुत कर दिया जाए। जैसे संख्याओं के अनुक्रमों, जैसे समान्तर श्रेणी, गुणोत्तर श्रेणी, या फिबोनेसे अनुक्रमों को कुछ किस्से जोड़कर उत्साहवर्धक उदाहरणों के साथ पेश किया जा सकता है। जैसे कि किस तरह गॉस ने, जब वे प्रारम्भिक स्कूल में ही थे, प्राकृतिक संख्याओं के योग को मालूम करने की तकनीक को खोजा। किस्सा इस तरह है कि गॉस के स्कूल शिक्षक ने विद्यार्थियों से पहली सौ संख्याएँ जोड़ने के लिए कहा। शिक्षक ने सोचा यह कार्य विद्यार्थियों को काफी समय तक व्यस्त रखेगा। परन्तु गॉस ने बहुत जल्दी उत्तर निकाल लिया। उसने यह खोज लिया कि यदि संख्याओं के सीधे क्रम के नीचे उल्टे क्रम में उन्हीं संख्याओं को लिख दिया जाए तो प्रत्येक स्तम्भ का योग समान हो जाता है (जैसा कि नीचे दिखाया गया है) । इस तरह वह तत्काल उत्तर पर पहुँच गया।

	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	...	99	100
	100	99	98	97	96	95	94	93	92	91	90	89	88	87	....	2	1
योग	101	101	101	101	101	101	101	101	101	101	101	101	101	101	....	101	101

हम विज्ञान को वाकई रोचक बना सकते हैं। प्रदर्शनों, लोगों के जीवन से जुड़े किस्सों, ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यों, विज्ञान के उपयोगों आदि के द्वारा। सवालों पूछकर, उनके उत्तर ढूँढ़कर। निस्संदेह, सवालों को पूछना अपने आप में उत्तर से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। लेकिन उत्तर खोजने का मार्ग विद्यार्थियों को विज्ञान के साथ प्रयोग करने के आनन्द का अनुभव कराता है।

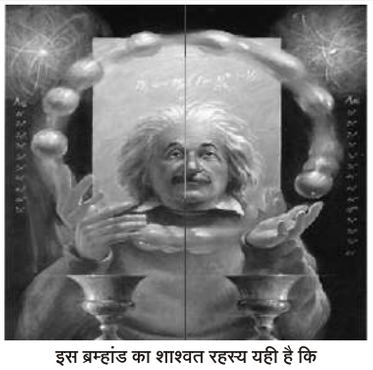

इस ब्रम्हांड का शाश्वत रहस्य यही है कि
इसे समझा जा सकता है।
– अल्बर्ट आइंस्टाइन

कृष्णन बालसुब्रह्मण्यम लॉरेंस लिवरमोर नेशनल लैब, कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, डेविस, और लॉरेंस बर्कले लैब, बर्कले में संयुक्त रूप से वरिष्ठ प्राध्यापक पद पर हैं। वे सैद्धान्तिक, गणनात्मक और गणितीय रसायनशास्त्र के व्यापक क्षेत्र में शोधरत हैं। उन्होंने 600 से अधिक शोध पत्र और रिलेटेविस्टिक इफेक्ट्स इन केमिस्ट्री पर 2 वाइली पुस्तकेंलिखी हैं। उनसे इस पते पर सम्पर्क किया जा सकता है: krishnan.balasubramanian@csueastbay.edu

वैज्ञानिक सोच का विकास

दिलीप रांजेकर

शिक्षा के कई उद्देश्यों में से जो मुझे सबसे अधिक आकर्षित करता है वह है 'वैज्ञानिक सोच का विकास'। इसके कई कारण हो सकते हैं – मेरी परवरिश, मैंने जो शिक्षा प्राप्त की, घर का माहौल और यह तथ्य कि मेरे भाई और बहन दोनों ही प्रतिष्ठित वैज्ञानिक हैं, या मैं जिस संस्था में काम करता था वहाँ काम का माहौल।

अपने पोते अनुराग को बढ़ता हुआ देखना और कर्नाटक के शोरापुर ब्लॉक में लगे विज्ञान मेले में एक दिन बिताना, इन दो अनुभवों ने मुझे इस विषय पर अधिक गम्भीरता से सोचने पर मजबूर कर दिया। अनुराग के लिए यह पूरा संसार नया है। उसने अभी–अभी अपने–आप चलना, खड़े होना, चीज़ों के लिए हाथ आगे बढ़ाना और चीज़ों पर दबाव डालना सीखा है। उसके सामने खोजने के लिए पूरा नया संसार है। यह अत्यंत आश्चर्यजनक है कि किस तरह वह बिना थके चीज़ों को दोहराता रहता है। अपनी उंगलियों को दबने या कुचले जाने से बचाता है। यदि गिर भी जाता है तो चोट लगने पर रोने में वक्त नष्ट नहीं करता। नॉब को घुमाना सीखता है। वह समझता है कि संगीत किससे शुरू होगा और किससे बन्द। किसी एक चीज़ से नई चीज़ की ओर उसका ध्यान रोचक तरीके से जाता है। उसके चेहरे पर तब अपार खुशी झलकती है जब वह स्विच से लाइट जलाने या बुझाने में सफल हो जाता है। या कि उस क्षण जब उसका सामना किसी नए आकर्षण से होता है। उसके लिए कोई पूर्वनिर्धारित विचार, धारणाएँ नहीं होतीं। चीज़ों को करने का कोई एक तरीका नहीं होता। किसी नए अनुभव से निकले नए तथ्यों को ग्रहण करने में कोई हिचक नहीं होती।

शोरापुर का विज्ञान मेला एक अलग अनुभव था। प्राथमिक स्कूल के बच्चों और उनके अध्यापकों ने बड़ी प्रवीणता से मेले में भाग लेने वाले 1500 बच्चों और उनके माता–पिता के लिए कई प्रकार के अनुभवों की व्यवस्था की थी। मेले ने कई आम मिथ्या धारणाओं को तोड़ा। लोगों में उनके मौजूदा ज्ञान और समझ के बारे में नई जागरूकता पैदा की। मिसाल के लिए, खुद अपनी बात करूँ तो, मेरी यह धारणा थी कि वज़न को ठीक–ठीक आँकने की मुझे बहुत अच्छी समझ है। एक स्टॉल में मुझे तीन अलग–अलग पत्थर उठाने थे और उन पत्थरों के वज़न का अन्दाज़ा लगाना था। लेकिन मेरे सभी अनुमान पत्थरों के वास्तविक वज़न के कहीं आसपास भी नहीं थे। विज्ञान मेला इसका सशक्त उदाहरण था कि बच्चों और शिक्षकों के द्वारा आयोजित ऐसे कार्यक्रम के ज़रिये आसान तरीकों से बड़े पैमाने पर जागरूकता, रुचि और ज्ञान को पैदा किया जा सकता है। मुझे इस बात ने भी आकर्षित किया कि विज्ञान मेला उसे आयोजित करनेवाले बच्चों और शिक्षकों के जीवन में एक फर्क भी लाएगा।

वैज्ञानिक सोच को कई शिक्षाविदों, दार्शनिकों और वैज्ञानिकों ने परिभाषित किया है। भारतीय संविधान ने वैज्ञानिक सोच के विकास को नागरिकों के मूल कर्तव्यों में से एक माना है। वैज्ञानिक सोच, जीने का एक ऐसा रवैया या ढंग है जिसमें तमाम बातें शामिल हैं – दिमाग का इस्तेमाल करना, तार्किक विश्लेषण करना, बिना किसी पूर्वाग्रह के नए तथ्यों और प्रमाणों का सामना करने के लिए सहर्ष तैयार रहना और नए प्रमाणों पर आधारित निष्कर्षों पर भी सवाल उठाने को प्रस्तुत रहना। यह किस चीज़ की माँग करता है या यह कहाँ ले जाता है? इसके लिए अनिवार्य रूप से ज़रूरी हैं: एक खुला दिमाग़, तथ्य जैसे हों उन्हें उसी तरह से समझने की क्षमता, चर्चा, वाद–विवाद, तर्काधार विकसित करना, तर्क–वितर्क, निष्कर्ष निकालने के पहले विश्लेषण करना और कई प्रकार की सच्चाइयों के सह–अस्तित्व को स्वीकारते हुए उनके साथ जीने को राजी रहना।

> विज्ञान ज्ञान का एक संग्रह होने से कहीं ज़्यादा सोचने का एक तरीका है
>
> – कार्ल सैगन

किसी अप्रशिक्षित दिमाग के लिए भी विज्ञान का मतलब है ज्ञान, प्रयोग, प्रश्न करना, आँकड़ों को एकत्रित करना, तर्क करना, और ऐसा कुछ जो रहस्यात्मक नहीं है, बल्कि साबित किया जा सकता है, छुआ जा सकता है, महसूस किया जा सकता है, पिघलाया जा सकता है और अनुभव किया जा सकता है। वैज्ञानिक सोच का मतलब होगा उपरोक्त सभी तथा ऐसी अन्य बातों को सहजता से ले सकना। अक्सर विज्ञान और वैज्ञानिक सोच में भेद किया जाता है, जो बिल्कुल उचित है। विज्ञान हमें ज्ञान देता है, तर्काधार देता है, अनुभव कराता है, चीज़ें जैसी हैं वैसी क्यों हैं यह समझाता है। वहीं 'वैज्ञानिक सोच' हमें उस ज्ञान और उन क्षमताओं तथा अनुभवों के सार्थक के उपयोग के बारे में मार्गदर्शन देती है, जिनसे विज्ञान हमें सुसज्जित करता है। ज्ञान के इस्तेमाल में बुद्धि और नैतिकता दोनों शामिल होते हैं। उदाहरण के लिए, वैज्ञानिक सोच 'धर्म निरपेक्ष' मनोवृत्ति की ओर ले जाएगा। जहाँ आप दूसरों की धार्मिक प्रथाओं का आदर करते हैं, बजाय इसके कि आप किसी खास धार्मिक परम्परा में अन्धी आस्था बना लें और उस के ही धर्म–पालन का सबसे सही तरीका होने का प्रचार करते रहें।

वैज्ञानिक सोच के संसार में 'अन्ध विश्वासों' और 'पौराणिक कथाओं के प्रति अन्धी श्रद्धा' के लिए कोई जगह नहीं है। पौराणिक कथाओं का इस्तेमाल बच्चों को कुछ चीज़ें सिखाने के लिए प्रभावशाली ढंग से किया जा सकता है। लेकिन ऐसी कथाओं पर, जिनका कोई प्रमाण नहीं है, विश्वास करने पर ज़ोर देना, एक तर्कसंगत समाज को बनाने की प्रक्रिया के प्रतिकूल होगा। वैज्ञानिक सोच को इतिहास के बारे में जानने के लिए भी इस्तेमाल किया जा सकता है। जहाँ पहले प्रमाण खोजना, उनकी जाँच करना, उन्हें कई अन्य घटनाओं से जोड़ना और आखिर में विश्वासपूर्वक निष्कर्ष निकालना होता है कि किसी विशेष कालखण्ड के दौरान क्या हुआ होगा। बजाय इसके कि अपनी निजी आस्था के आधार पर तय करें कि क्या हुआ होगा या उसकी अस्पष्ट व्याख्याओं का सहारा लिया जाए।

मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि स्वयं विज्ञान के लिए वैज्ञानिक सोच का जो अर्थ है, उससे कहीं अधिक उसकी सार्थकता उस व्यापक तरीके में है जिसमें समाज और मनुष्य सोचते हैं, प्रतिक्रिया करते हैं और खुद को संचालित करते हैं। उदाहरण के लिए कोई डॉक्टर बड़ा वैज्ञानिक तो हो सकता है, परन्तु वह वैज्ञानिक सोच वाला व्यक्ति नहीं माना जाएगा यदि वह मरीज़ों से समय पर नहीं मिलता/मिलती, और इलाज के लिए ज़रूरत से ज़्यादा पैसे वसूलता/वसूलती है।

यह बात मुझे चोट पहुँचाती है जब मैं सुनता हूँ कि प्रतिष्ठित विज्ञान–शिक्षण संस्थाओं में जाति, लिंग और कई अन्य असंगत विषयों पर आधारित राजनीति हो रही है। कुछ ही समय पहले देश के प्रसिद्ध संस्थानों में से एक में हुई दो आत्महत्याओं को याद किया जा सकता है। जिनमें से एक सामाजिक पिछड़ेपन पर आधारित उत्पीड़न की वजह से और दूसरी व्याख्याता की अविवाहित स्थिति, जबकि माता–पिता शादी के लिए ज़ोर दे रहे थे, से पैदा हुए दबाव के कारण हुई। ये घटनाएँ पूरे समाज में 'वैज्ञानिक सोच' के विकास की ज़रूरत को प्रतिबिम्बित करती हैं। कैसे हम 21वीं सदी में अब भी जाति, पंथ, धर्म, लिंग, वैवाहिक स्थिति और आर्थिक स्थिति के आधार पर भेदभाव करते हैं। क्यों हम यह स्वीकार नहीं कर पाते कि विवाह व्यक्तिगत पसन्द है, और यह कि विवाह की उम्र के लिए जो प्रचलित मान्यताएँ हैं उनकी आज के आधुनिक समाज में कोई जगह नहीं होनी चाहिए? वैज्ञानिक सोच मौजूदा स्थिति पर सवाल उठाने, घिसीपिटी धारणाओं को तोड़ने और आज के समाज की ज़रूरतों को पूरा करने वाले सामाजिक व्यवहारों को स्थापित करने में बड़ी भूमिका अदा करती है।

मेरे लिए वैज्ञानिक सोच है विचार करने के नए तरीक़ों को स्वीकारना, लगातार सवाल करते रहना, खुले मन से यह स्वीकारना कि खुद के अनुभवों, दृष्टिकोणों और निष्कर्षों को लगातार बार–बार सुधारने की ज़रूरत रहती है, और रूढ़िबद्ध धारणाओं को तोड़ना। यह हमारी 'मैं नहीं जानता' कह सकने की क्षमता के बारे में है। सही मायनों में एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण ऐसा होना चाहिए जो हमें सहनशील बनाए, जाति, धर्म, राजनीति और भौगोलिक सीमाओं के बनावटी अवरोधों को तोड़ने के लायक बनाए। वह हमें इस सीमा तक आत्मनिर्भर बना सके कि हममें अपने जीवन की किसी भी अवस्था में खुद को बदलने की हिम्मत हो।

दिलीप रांजेकर, अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन के मुख्य कार्यकारी अधिकारी हैं।

मैंने पूछा

ओ प्यारे स्फिंक्स !
यूँ तो अब तक पूछ चुकी हूँ तुमसे जाने कितनी बातें
लेकिन और नए प्रश्न मन में हैं घुमड़–घुमड़ कर आते
चाह रही हूँ पूछूँ उत्तर इन सब प्रश्नों के तुमसे
क्या कुछ ज़्यादा मुश्किल होगी तुमको इससे?

'मेरी बच्ची', बोला स्फिंक्स, निश्चित होगा निवारण
मदद करूँ कुछ इस तरह जिससे तुम समझो कारण
जिनको लेकर जगते हैं ये प्रश्न और उत्सुकता तुम्हारी
पर करना होगा इंतजार, हो अगली मुलाकात हमारी

तब तक लेकिन एक सीख तुम रखना याद कि चीज़ें
जैसे होती हैं, वैसे उनके होने का कारण हम चीन्हें
इससे भी ज़्यादा महत्व है इसका, कि हम सवाल करें
इसलिए तुम कोशिश करो की मन पूछने से न डरे

नीरजा राघवन द्वारा लिखित और चिल्ड्रन्स बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'आई वन्डर व्हाइ' (आईएसबीएन 81–7011–937–5), के पृष्ठ 88 पर प्रकाशित कविता का हिन्दी रूपान्तरण द्वारा राजेश उत्साही।

गुणसूत्र बताते हैं कि हम सब एक जैसे हैं

मुझे यह जानकर अच्छा लगता है
वानर और मुझमें, कम समानता है
पर दोनों के गुणसूत्र यह बताते हैं
कि हम अभी भी वानर के नाती हैं

याद रहे यह बात और इसमें है बहुत दम
फर्क जितना दिखता है, उससे भी है कम
हो सकता है तुम लम्बे हो, मैं मोटी कम
करें भेद, इतना ही फर्क बहुत मानें हम।

यदि भगवान तुम्हारा, मेरा एक नहीं,
लेकर उसका नाम, लड़ते रहते हर कहीं,
हो खून खराबा, उससे भी नहीं हिचकते!
नख से शिख तक, कितना है भेद करते !

पर ये चार अक्षर ए, टी, जी और सी
सबमें लगभग एक ही है इनकी सीढ़ी
जमावटें ऐसी, अन्तर बस जरा–जरा से
विचित्र, कि भेद फिर बड़े हो जाते कैसे?

इसीलिए हम सब हैं मूल में एक से,
फर्क चाहे हो हमारे नाम और भेष में,
ठीक वैसे, जैसे एक चमकती ऊर्जा के
होते कितने रूप: सही कहा ना हमने ?

बस इतना भर ख्याल अगर हम रख लें
सब जल्दी ही यह अहसास भर कर लें
हों हम कितने भी एक–दूसरे से असहमत
हिल–मिल रहने की कर सकते हैं जहमत ।

वैसे ही जैसे वे ऊर्जा के पुंज बदलते हैं
लेन देन से नए नाम, नए रूप धरते हैं,
हम भी हाथों में लेकर एक–दूसरे का हाथ,
धरती को फिर से जोड़ सकते हैं एक साथ

– नीरजा राघवन की मूल अंग्रेज़ी कविता का
हिन्दी रूपान्तरण : राजेश उत्साही

कक्षा के भीतर

कुछ करके देखें, कुछ बना के देखें

अरविन्द गुप्ता

यह ज़रूरी नहीं कि अच्छा विज्ञान महँगा हो। यह बहुत सस्ता और मज़ेदार भी हो सकता है।

प्राथमिक विज्ञान पर सबसे बढ़िया भारतीय किताब, 'प्रिपरेशन फॉर साइन्स' (विज्ञान के लिए तैयारी), सन् 1928 में प्रकाशित हुई थी। इसे एक अमेरिकन अर्थशास्त्री रिचर्ड ग्रेग्स ने लिखा था, जिन्हें महात्मा गाँधी से गहरी प्रेरणा मिली थी। ग्रेग्स ने हिमाचल प्रदेश में अमेरिकन मिशनरी एस.ई.स्टोक्स के एक स्कूल में दो साल तक गतिविधियों पर आधारित विज्ञान पढ़ाया। भारतीय स्कूलों में बच्चों को विज्ञान कैसे पढ़ाया जाना चाहिए इसके लिए सर्वोत्तम पथ प्रदर्शक का काम यह किताब अभी तक करती आ रही है।

ग्रेग्स ने लिखा था:

'इसके लिए ज़रूरी उपकरण बहुत ही सस्ते और सरल होते हैं और उसकी लगभग सभी चीज़ें गाँव के बच्चों के लिए जानी-पहचानी भी होती हैं। उसका अधिकांश हिस्सा गाँव के बढ़ई, कुम्हारों और लुहारों द्वारा बनाया जा सकता है। बच्चों की ऐसी धारणा नहीं बनना चाहिए कि विज्ञान का अर्थ मशीनें या कोई अजीबोगरीब प्रौद्योगिकी है। विज्ञान के महान पथ-प्रदर्शकों ने अपना काम बहुत ही सरल उपकरणों से किया था। इसलिए, उनके पदचिन्हों पर चलते हुए ज़्यादा खर्चीले और विस्तृत उपकरण के बिना भी वैज्ञानिक सोच-विचार करना सीखना सम्भव है। आखिरकार, इस प्रक्रिया में शामिल सबसे महँगा उपकरण तो विद्यार्थियों का दिमाग है।'

ग्रेग्स ने आगे यह भी कहा, 'मैं नहीं चाहता कि गाँवों के भारतीय बच्चे यह धारणा बनाएँ कि विज्ञान केवल स्कूल का मामला है, या कि उसका सम्बन्ध केवल चमकते हुए पीतल तथा काँच के उपकरणों और अन्य ताम-झाम से है। मैं मानता हूँ कि पश्चिमी प्रयोगशालाओं में इस्तेमाल होने वाले सभी महँगे और जटिल उपकरणों के बिना भी, या फिर ऐसी बहुत ही कम चीज़ों का इस्तेमाल करके भी, ये बच्चे ज़्यादा स्पष्ट ढंग से सोचना सीख सकते हैं और वैज्ञानिक नज़रिया विकसित कर सकते हैं।'

जैसा कि विज्ञान के इतिहास में अक्सर होता आया है, यह दूरदर्शी किताब सालों तक कहीं दबी रही। आखिरकार यूनीसेफ के एक सलाहकार कीथ वारेन ने 1975 में इसे दोबारा खोज निकाला। उन्होंने इसके कुछ भागों के लिए सचित्र उदाहरण बनाए और उसे 'प्रिपरेशन फ़ॉर अंडरस्टेंडिंग' के नाम से फिर से प्रकाशित किया। यह बच्चों को उनके चारों ओर के संसार में एक अन्तर्निहित व्यवस्था को खोज निकालने में मदद करती है। बच्चे ऐसी चीज़ों, जो बिलकुल महँगी नहीं होतीं, जैसे छोटे चिकने गोल पत्थरों, टहनियों, पत्तियों, तार, बीजों और अन्य प्राकृतिक पदार्थों का इस्तेमाल करके प्रकृति में व्यवस्थित संरचनाओं (पैटर्न्स) को ढूँढ़ निकालते हैं। यदि बच्चों के पास कागज़, पेंसिल नहीं है तो वे इन संरचनाओं को डण्डियों की सहायता से ज़मीन पर बना लेते हैं।

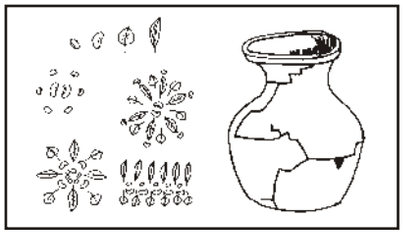

बच्चे पत्तियों और बीजों को जमाकर कई प्रकार की रंगोली जैसी आकृतियाँ बनाते हैं। बच्चों को एक टूटे हुए मिट्टी के बर्तन के टुकड़ों को गीली मिट्टी की सहायता से आपस में जोड़ने के लिए कहा जाता है; यह एक अच्छी त्रिआयामी जिगसॉ पहेली को सुलझाने के जैसा है।

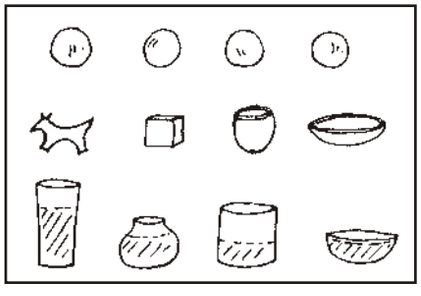

एक दूसरे अभ्यास में, बच्चे सनी हुई मिट्टी की चार समान गेंदें लेते हैं। फिर वे प्रत्येक को अलग-अलग आकार में ढालते हैं, जैसे जानवर, एक घनाकार पिण्ड, एक बर्तन और एक प्लेट। बच्चों से फिर पूछा जाता है कि उनमें से कौन- सा ज़्यादा भारी है? क्या आकार के बदल जाने से वज़न भी बदल जाता है?

बच्चे एक ही कप से पानी चार अलग-अलग बर्तनों में डालते हैं। फिर उनसे पूछा जाता है, 'किस बर्तन में ज़्यादा पानी है?'

किताब का मूल सिद्धान्त यह है कि बच्चे किसी चीज़ को समझ सकें इसके लिए पहले उन्हें अनुभव की ज़रूरत होती है: देखना, छूना, सुनना, स्वाद लेना, सूँघना, चुनना, जमाना, अलग-अलग हिस्सों को जोड़कर किसी चीज़ को बनाना, और चीज़ों के हिस्सों को अलग-अलग करना। बच्चों को वास्तविक चीज़ों के साथ प्रयोग करने की ज़रूरत होती है।

स्कूलों में विज्ञान की शिक्षा को दोबारा जीवित करने का सबसे बढ़िया भारतीय प्रयास निश्चित रूप से 'होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम' था। 1972 में होशंगाबाद से शुरू होकर होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम बाद में मध्यप्रदेश के 14 जिलों के 1000 से ज़्यादा सरकारी माध्यमिक स्कूलों में फैला। यह स्वयं खोजने की प्रक्रिया पर आधारित था। बच्चे सरल प्रयोगों को करते और फिर वे अपने प्रयोगों पर आधारित प्रश्नों के उत्तर देते। वे ज्ञान

के 'निष्क्रिय उपभोक्ता' न होकर उसके 'वास्तविक निर्माता' होते थे। इसमें कोई पाठ्यपुस्तकें न होकर केवल कार्य पुस्तकें (वर्कबुक्स) थीं। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत पाठ्यक्रम की रूपरेखा तैयार करने में शिक्षकों की सक्रिय भागीदारी थी। इसने कई सुयोग्य और उत्साही लोगों को आकर्षित किया। प्रोफेसर यशपाल शिक्षकों के प्रथम प्रशिक्षक बनकर आए। इसने दबी पड़ी जबर्दस्त ऊर्जा और सृजनशक्ति को बाहर आने का मौका दिया। यह काम सिर्फ मानक फ्लास्कों को स्थानीय काँच की बोतलों से बदल देने तक सीमित नहीं था। यह खोज ऐसे स्थानीय विकल्पों, सस्ते, परिचित पदार्थों और सामग्री के लिए थी, जो बच्चों के सांस्कृतिक वातावरण के नजदीक हो और जिनसे वे कटा हुआ महसूस न करें। इसके लिए एक खुले दिमाग और आलोचनात्मक नज़रिए की ज़रूरत थी। बच्चों ने 'विच्छेदन सुइयों' को छोड़कर उनका काम बबूल के काँटों से लिया। टाइट्रेशन के लिए इस्तेमाल होने वाले संकेतक फिनॉफ्थेलीन को एक जानी-पहचानी कब्ज़ दूर करने वाली गोली 'वैक्यूलेक्स' में खोज लिया गया। इस गोली को पानी की एक निश्चित मात्रा में घोला गया जिससे एक बहुत अच्छा 'संकेतक' बन गया।

द्वितीय विश्व युद्ध ने कई देशों को तबाह कर दिया था। कठोर आर्थिक परेशानियों से जूझते हुए कुछ गरीब देशों ने किसी तरह स्कूल बनाने का इंतज़ाम तो कर लिया। पर फिर उनके पास विज्ञान की प्रयोगशालाएँ बनाने के लिए पैसा नहीं बचा। उनको बनाना महँगा काम था। 1950 के दशक के बाद के सालों में एक ब्रिटिश शिक्षक जे.पी. स्टीफेन्सन ने एक किताब निकाली। इसमें बहुत ही सरल सामग्री का इस्तेमाल करते हुए प्रक्रिया-आधारित विज्ञान सीखने की सम्भावनाएँ दर्शाई गई थीं। किताब का शीर्षक अपने आप में महत्वपूर्ण था 'सजेशन्स फॉर साइन्स टीचिंग इन डिवास्टेटेड कन्ट्रीज' (तबाह हो चुके देशों में विज्ञान शिक्षण के लिए सुझाव)। इस किताब ने दुनिया में एक क्रान्ति ला दी। इसने दिखाया कि महँगे और शानदार उपकरण साधारण बच्चों के जीवन से बहुत दूर की चीज़ें थीं। वास्तव में बच्चों के लिए बिलकुल विदेशी और परायेपन का एहसास करानेवाली। यूनेस्को किताब के दायरे का विस्तार करने तथा उसे गहराई देने के लिए तैयार हो गया, और इस प्रकार विज्ञान की गतिविधियों के लिए बाइबिल कही जाने वाली प्रसिद्ध किताब *यूनेस्को सोर्स बुक फॉर साइन्स टीचिंग* (विज्ञान शिक्षण के लिए यूनेस्को की स्रोत पुस्तक) सामने आई। 1963 में इस किताब को हिन्दी, मराठी और कुछ अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवादित किया गया।

विनी हारलेन और जॉस एल्स्तगीस्त की लिखी *द यूनेस्को सोर्स बुक फॉर साइन्स इन द प्राइमरी स्कूल* (प्राथमिक स्कूल में विज्ञान के लिए यूनेस्को की स्रोत पुस्तक) 1990 के दशक की शुरुआत में सबसे पहले प्रकाशित हुई थी। इस किताब के अन्तर्राष्ट्रीय संस्करण की कीमत 20 अमेरिकी डॉलर रखी गई थी। खुशकिस्मती से, नेशनल बुक ट्रस्ट ने इस किताब के एक सस्ते भारतीय संस्करण को फिर से छापा, जिसकी कीमत सिर्फ 65 रुपये थी। इस किताब का कभी पुनरावलोकन नहीं किया गया लेकिन अभी भी यह चौथी बार फिर से छपी है। इस बात से मेरा भरोसा जगता है कि, यदि एक अच्छी और उचित कीमत की किताब हो, तो उसकी बिक्री साधारण शिक्षकों के बीच अच्छी होगी। किताब के दो भाग हैं: एक सैद्धान्तिक खण्ड है, और उसके बाद विज्ञान की गतिविधियों पर चार अद्भुत खण्ड हैं : बच्चे और पानी; बच्चे और संतुलन; बच्चे, आइने और प्रतिबिम्ब; तथा बच्चे और वातावरण। काश कि कुछ दूरदर्शी लोग इन गतिविधियों से भरी किताबों का स्थानीय भाषाओं में अनुवाद कर देते तो कितना अच्छा होता!

दुनिया भर के अनुभवों ने यह दिखाया है कि पहले से तैयार की गई विज्ञान की किट शायद ही कभी काम में आती है। ज़्यादातर मामलों में ये बन्द ही रखी रहती हैं। शिक्षक ने न तो उनके बारे में सोचा था, न उन्हें बनाया था और न ही उन्हें जोड़कर इकट्ठा किया था और इसीलिए वह उन्हें आत्मविश्वास के साथ इस्तेमाल नहीं कर पाता/ कर पाती। किट इस्तेमाल करते वक्त टूट सकती है। इसलिए इसे बन्द कर के रखना ही सबसे ठीक लगता है। लेकिन जब कभी भी शिक्षकों को रोज़मर्रा की सामग्री का उपयोग करते हुए विज्ञान के सरल नमूनों को बनाने की सम्भावनाएँ दिखाई गईं तो उन्होंने बड़ा उत्साह दिखाया। जब वे खुद अपने हाथों से चीज़ें बनाते हैं तब वे 'सशक्त' महसूस करते हैं, और यह सम्भावना ज़्यादा रहती है कि वे ऐसी चीज़ों का पढ़ाने में इस्तेमाल करेंगे।

हम उपभोक्तावादी समाज में रहते हैं जहाँ कबाड़ के अम्बार पैदा होते हैं : कार्डबोर्ड के डिब्बे, बॉल पेन की रीफिलें, पुराने पेन, सिक्के, झाड़ुएँ, अखबार, साइकिल की ट्यूबें, माचिस के डिब्बे, टैट्रापैक्स, आइस्क्रीम की डण्डियाँ, नलियाँ आदि। इस सूची का कोई अन्त नहीं है। इन सारे सामानों का सार्थक ढंग से फिर से उपयोग (पुनर्चक्रीकरण) करके विज्ञान के मज़ेदार नमूने और बच्चों के खिलौने बनाए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, प्राथमिक स्कूल के बच्चे कैमरा फिल्म रखने की दो खाली डिब्बियों को एक साइकिल की ट्यूब के टुकड़े से जोड़कर, तथा वॉल्व के लिए चिपकने वाले टेप के टुकड़ों का इस्तेमाल करके एक शानदार हैंडपम्प बना सकते हैं। यह सस्ता हैंडपम्प एक गुब्बारे को फुला सकता है और पानी को 10 फुट दूर तक फेंक सकता है।

बच्चे सबसे अच्छे तरीके से तब समझते हैं जब वे विज्ञान के किसी सिद्धान्त को किसी खिलौने में काम करता हुआ पाते हैं। यदि वे किसी चीज़ के साथ खेल पाते हैं तो वे उसे बेहतर तरीके से महसूस करते हैं। 'अपकेन्द्री' और 'अभिकेन्द्री' बल जटिल अमूर्त शब्द हैं और बच्चों के लिए इनका कोई मतलब नहीं होता। लेकिन एक घूमने वाली झाड़ू इन शब्दों को अर्थ दे सकती है। खुद का बनाया एक खिलौने वाला कलाबाज जब घुमाने पर हवा में अपने हाथपैर फैलाता है तो वह इस अमूर्त अवधारणा को स्थूल आकार दे सकता है। सुदर्शन खन्ना की किताब *द ज्वॉय ऑफ मेकिंग इण्डियन टॉयज* में विज्ञान के ऐसे 100 अद्भुत खिलौनों को संग्रहित किया गया है। हिन्दी में यह सुन्दर

सलौने भारतीय खिलौने नाम से उपलब्ध है। (सिर्फ 40 रुपये कीमत की इस किताब को एनबीटी ने प्रकाशित किया है)। ये खिलौने युगों से चलन में हैं। हर पीढ़ी ने इस खजाने को बढ़ाया है और उसे समाज की सम्पत्ति के रूप में अपने पीछे छोड़ गई है। 'इस्तेमाल करके फेंक दिए जाने वाले' सामानों से बनाए गए ये खिलौने पर्यावरण के अनुकूल हैं और गरीब से गरीब बच्चे भी इनका आनन्द ले सकते हैं। इनको बनाने में बच्चे कई तरह की सामग्री को काटना, छोटा करना, चिपकाना, जोड़ना, कील से ठोकना और आपस में जोड़कर कोई संरचना बनाना सीखते हैं। इससे वे उम्दा विज्ञान भी सीखते हैं।

विज्ञान की समस्या यह है कि लोग अभी भी अपने हाथ गन्दे नहीं करना चाहते। रट्टा लगाने, चॉक से लिखने और भाषण देने की विधि अब भी सब जगह हावी है। हर आदमी पाठ्यक्रम को कवर करना चाहता है। इस चक्कर में वह यह भूल जाता है कि शिक्षा का मुख्य लक्ष्य ही चीज़ों को अनकवर करना है।

बॉस्टन में बच्चों के संग्रहालय की रचनात्मक निदेशक और बड़े बदलाव लाने वाली किताब मेकिंग थिंग्स की लेखिका ऐन आयर वाइज़मैन ने अच्छे विज्ञान के मूलतत्व को सार रूप में इन शब्दों में पेश किया है:

ठीक है असफल होना

ठीक है गलतियाँ करना
वे तुम्हें बहुत कुछ सिखाएँगी।

ठीक है मनमाफिक समय लेना
ठीक है खुद के अनुकूल गति से चलना
ठीक है चीज़ों को अपने ढंग से करके देखना
ठीक है असफल होना

इसके भय से मुक्त हो,
अवसर है दोबारा कोशिश करने का

ठीक है दूसरों को बुद्धू दिखना
ठीक है औरों से अलग होना

ठीक है प्रतीक्षा करना,
जब तक मन भीतर से तत्पर ना हो
ठीक है प्रयोग करना (सुरक्षा में)

ठीक है हर 'करना चाहिए' से 'क्यों पूछना'
खास है तुम्हारा तुम होना
ज़रूरी है बेतरतीबी मचा देना,

और फिर सफाई करने को प्रस्तुत रहना
(अक्सर सृजन का काम बेतरतीबी मचाता है)

अरविन्द गुप्ता पुणे के चिल्ड्रन्स साइन्स सेन्टर में काम करते हैं। इस लेख में जिन किताबों का जिक्र किया गया है वे उनकी वैबसाइट http://arvindguptatoys.com पर देखी जा सकती हैं। उनका ई-मेल पता है: arvindguptatoys@gmail.com

---

विज्ञान की कक्षा में बच्चों की आवाज़

ज्योत्सना वीजापुरकर

विज्ञान की शिक्षा पर हुए अनेक शोधों ने यह दिखाया है कि बच्चों को विज्ञान की कक्षा में जो पढ़ाया जाता है उससे उनकी स्वयं की वैकल्पिक अवधारणाएँ बहुत भिन्न होती हैं। ज़्यादातर शिक्षण के प्रचलित तरीके बच्चों की एक गलत धारणा में संशोधन करके उसे दूसरी ऐसी धारणा में बदल देते हैं, जो फिर भी गलत ही होती है। अच्छी बात यह है कि शिक्षण से धारणा में बदलाव लाने में तो मदद मिलती है, परन्तु दुखद बात यह है कि अक्सर यह बदलाव वह नहीं होता जिसके बारे में शिक्षक ने सोचा था।

शोधकर्ताओं ने उजागर किया है कि पढ़ाए जाने के बावजूद बच्चे ढेर सारी वैकल्पिक अवधारणाओं को मानते हैं। यह तथ्य दर्शाता है कि कहीं पर कोई तो उन बातों को सुन रहा था जो बच्चे कहना चाहते थे। निश्चित रूप से आगे की छानबीन के लिए इस प्रकार के किसी सूत्र को शुरुआती बिन्दु बनाना होगा।

शिक्षकों के साथ काम करते हुए यह बात बार-बार निकल कर सामने आई कि बच्चों के अनेक विचार और अवधारणाएँ शिक्षकों के लिए बिल्कुल चौंकाने वाले होते हैं। मुझे यह देखकर धक्का-सा लगा कि बहुत बड़ी संख्या ऐसे शिक्षकों की है जो इस बात से अनजान होते हैं कि बच्चों के दिमाग में क्या चल रहा है। ऐसा क्यों है कि सालों पढ़ाने के बाद भी हमें यह अहसास नहीं हो पाता कि जो सिखाया जा रहा है और जो वह सीख रहा है, उसके बीच सम्बन्ध नहीं है?

मेरा विश्वास है कि इसका उत्तर उस ढर्रे में छिपा है जिस ढर्रे से हमारी विज्ञान की कक्षाएँ संचालित की जाती हैं।

एक आम कक्षा में जब शिक्षक कोई प्रश्न पूछता है तो एक या दो हाथ ऊपर उठते हैं। एक बच्चा अपेक्षित उत्तर दे देता है, उसे स्वीकृति मिल जाती है। कक्षा आगे बढ़ जाती है। अक्सर पूछे गए प्रश्न का पाठ्यपुस्तक के अनुसार कोई सही 'उत्तर', या कहें कि एक मात्र सही उत्तर होता है। कुछ बिरले मौकों

पर हो सकता है कि पाठ्यपुस्तक के बजाय कुछ मौलिक उत्तर आए। यहाँ भी बच्चे जल्दी ही समझ जाते हैं कि चाहा गया एकमात्र 'सही' उत्तर क्या है। यह उत्तर देकर वे शिक्षक को खुश कर देंगे। बच्चों के लिए स्कूल के जीवन के मायने हमेशा से ही शिक्षक को खुश करना या कम से कम उन्हें संतुष्ट करना रहे हैं। बच्चे चतुर होते हैं। यदि प्रश्नों में ही उत्तर की ओर इशारा ना भी हो, तब भी शिक्षक के लहज़े, शारीरिक हाव–भाव से बच्चों को सम्भावित उत्तर पर पहुँचने के इशारे मिल जाते हैं।

वर्षों पहले मैं पाँचवी कक्षा के बच्चों के साथ काम करती थी। उस दौरान कक्षा में हुई पारस्परिक बातचीत का एक दृश्य मुझे याद है जो यहाँ प्रस्तुत है।

मैंने पूछा कि, 'क्या किसी ने सूर्य पक्षी देखा है?'

'हाँ', कई बच्चों ने अपने हाथ उठाते हुए कहा।

'वह किस रंग का होता है?' मैंने पूछा

'पीला'। (चतुराई भरा अन्दाज़ा!! सूर्य पक्षी 'पीला' तो होना ही चाहिए।)

'ठीक है, वह कितना बड़ा होता है?'

कई बच्चे मुझे अपने हाथों से दिखाने लगे, हथेलियों को एक–दूसरे के आमने–सामने परन्तु अलग रखकर।

जैसे–जैसे किसी संकेत के लिए वे मेरे चेहरे के हाव–भावों का बड़े ही सूक्ष्म रूप से निरीक्षण करते, उनकी हथेलियाँ धीरे–धीरे पास आतीं फिर धीरे से दूर हो जातीं। मैंने जान–बूझकर बनावटी चेहरा बना रखा था इसलिए उन्हें कुछ समझ नहीं आ रहा था कि कहाँ रुकें! और इस तरह वे पकड़े गए।

ऐसी कक्षाओं में एक आम दृश्य यह रहता है कि जब बच्चे बोलते हैं (जो आमतौर पर कक्षा में अव्वल आने वाले एक या दो बच्चे रहते हैं), तो केवल शिक्षक सुनता है; अन्य बच्चे शायद उस उत्तर की ओर कोई ध्यान नहीं देते। यदि वे ध्यान देते भी हैं – और यदि वह उत्तर उनके द्वारा सोचे गए उत्तर के प्रतिकूल भी होता है – तब भी खुल कर कोई नहीं बोलता। कक्षा में बच्चे इस प्रकार की संस्कृति के आदी हो जाते हैं। हम सभी जिन्होंने कक्षा के बाहर बच्चों से बातचीत की है यह जानते हैं कि बच्चे कितनी बातें करते हैं। किस तरह वे कठिन और मौलिक प्रश्न पूछते हैं। माता–पिता अक्सर बहुत गर्व से इसका प्रदर्शन करते हैं। तब यह कितना अस्वाभाविक है कि वे विज्ञान की कक्षा में अपनी स्वाभाविक जिज्ञासा को दबा लेते हैं!

इस कक्षा की तुलना ऐसी कक्षा से करें, जहाँ प्रत्येक बच्चा जो कहा जा रहा है, उसे सुनता है और उसके प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। ऐसी कक्षा जहाँ प्रत्येक बच्चे को न सिर्फ बोलने की अनुमति दी जाती है, बल्कि उसे बोलने के लिए सक्रिय रूप से प्रोत्साहित भी किया जाता है। इसकी ज़रूरत खासतौर से कक्षा के शर्मीले बच्चों के लिए पड़ती है। बच्चों से भरी हुई कक्षा में कुछ तो संकोची होते हैं, कुछ उदासीन होते हैं और कुछ बहुत ज़ोर–शोर से शिक्षक का ध्यान अपनी ओर खींचने में लगे रहते हैं।

इस संस्कृति को कक्षा में अपनाने का ज़िम्मा शिक्षक के ऊपर है। एक बार जब इसे करने की तकनीकों को निर्धारित कर लिया जाता है, तब वे आसान यहाँ तक कि बहुत ही मामूली लगने लगती हैं, और इसी में उनकी शक्ति छिपी होती है।

हो सकता है कि कई बच्चे, जो किसी भी औपचारिक सभा में बड़े समूह के सामने बोलने में हिचकते हैं, ऐसा अपनी खिल्ली उड़ाए जाने के डर से करते हों। यह नियम, कि कोई भी किसी के प्रश्न या उत्तर पर नहीं हँसेगा, हमारे बहुत काम आया है। यह ज़रूर है कि इसे लागू करना कठिन है, क्योंकि हँसी तो अचानक ही फूट पड़ती है। लेकिन, ऐसे में उस बच्चे से कुछ उत्साहवर्धक कह देना – जैसा सामान्य शिष्टाचार हम अपने साथियों के बीच निभाते हैं – तत्काल स्थिति को बदल देता है।

उदासीन बच्चे, यह जानकर कि उनकी बात गम्भीरता से सुनी जाएगी, कक्षा में रुचि लेने लगते हैं। शुरुआत से ही यह तय कर देना महत्वपूर्ण है कि जब शिक्षक या किसी विद्यार्थी को कुछ कहना हो तो अन्य लोग उनकी बात ध्यान से सुनेंगे, और यदि वे चाहें तो अपनी प्रतिक्रिया देंगे। जब तक हम इसे लागू करने के लिए भरसक प्रयास नहीं करते, हमारी कक्षाओं में ज़्यादातर बच्चे दूसरे विद्यार्थियों की बातों को अनसुना करते रहेंगे। यदि कोई संवाद होता भी है, तो आमतौर पर वह शिक्षक–विद्यार्थी के बीच का संवाद बन कर रह जाता है। पर जब यह नियम लागू हो जाता है, तो विद्यार्थी–विद्यार्थी के बीच खुलकर संवाद होता है, जिसका संचालन शिक्षक करता है (ताकि संवाद पढ़ाये जा रहे विषय पर केन्द्रित रहे)।

अगर शुरुआत में ही यह सन्देश दे दिया जाता है कि शिक्षक हर बच्चे से अपेक्षा रखता है कि वह खुल कर बोले, ऐसा करने के लिए हर बच्चे को मौका देने का उसका पूरा इरादा है, तो कक्षा में आक्रामक रूप से ध्यान खींचने वाले बच्चे शान्त हो जाते हैं। लेकिन उन्हें हतोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए बल्कि दूसरों के समान ही उन्हें भी बोलने का मौका दिया जाना चाहिए।

यह हो सकता है कि प्रत्येक कक्षा में हरेक बच्चे से बुलवाना सम्भव न हो। परन्तु अनुभव यह रहा है कि कुछ समय के बाद बच्चे खुल जाते हैं। कभी–कभी जब विरोधी दृष्टिकोण होते हैं, तो मैं उन्हें हाथ उठाने के लिए कहती हूँ कि वे किस विचार से सहमत हैं। यदि कुछ बच्चे अपने हाथ बिल्कुल ही नहीं उठाते तो इसमें भी कोई हर्ज नहीं। हमारी कक्षाओं में उन्होंने सीखा है कि पक्का न होना भी ठीक है। अगला स्वाभाविक प्रश्न पूछें, 'हम सही बात का

कैसे पता कर सकते हैं?' और लीजिए कक्षा में विज्ञान का वास्तविक अभ्यास शुरू हो जाता है।

जब कुछ कहने के नकारात्मक परिणाम नहीं होते, तब सही मायनों में विचारों की खोज शुरू होती है। कभी-कभी कोई बहुत ही होशियार बच्चा बहुत अद्भुत उत्तर देता है जिसमें 'यदि' और 'परन्तु' भी समाए रहते हैं। परन्तु शिक्षक के लिए अच्छा यही होगा कि वह तुरन्त ही उस उत्तर की श्रेष्ठता को स्वीकार न करे, जब तक कि बाकी कक्षा से यह नहीं पूछ लिया जाता कि वे क्या सोचते हैं। अन्यथा कोई भी अपना स्वयं का उत्तर ढूँढ़ने के लिए प्रेरित नहीं होगा। और हाँ, जब सभी अपनी बात कह चुके हों, तब पहले उत्तर को ज़रूर सराहा जाना चाहिए।

कक्षा के इस प्रकार के वातावरण में शिक्षक यह जानता है कि बच्चे क्या सोचते हैं। शिक्षक के लिए यह जानना क्यों महत्वपूर्ण है? पाठ्यक्रम तैयार है, पाठ्यपुस्तकें लिख दी गई हैं और निर्धारित कर दी गई हैं, अक्सर किसी ऐसे व्यक्ति के द्वारा जो वास्तविक शिक्षण प्रक्रिया से बहुत दूर है। ठीक इसीलिए यह बेहद ज़रूरी है कि शिक्षकों को यह पता चलना चाहिए कि क्या काम आया और क्या असफल हुआ। वे इस लम्बी शृंखला की अन्तिम और सबसे अहम कड़ी हैं, तंत्र को उसके प्रयासों का परिणाम बताने (फीडबैक देने) के लिए शिक्षक से बेहतर कौन हो सकता है?

> *सिर्फ इसलिए कोई चीज़ अनुपयोगी नहीं हो जाती क्योंकि उसने आपकी अपेक्षा के अनुसार काम नहीं किया।*
>
> *– थॉमस ए. एडीसन*

बच्चों के वैकल्पिक विचारों को जान लेने के अलावा कक्षा की इस संस्कृति के और भी कहीं ज़्यादा बड़े लाभ हैं। बच्चे वाकई कक्षा में सक्रिय भागीदारी करने लगते हैं। वे जानते हैं कि उनके विचार मायने रखते हैं। वे ज्ञान की प्रक्रिया से जुड़े द्वन्द्वों को सुलझाना तथा अपने और दूसरों के उत्तरों का समीक्षात्मक ढंग से मूल्यांकन करना सीखते हैं।

और इस प्रकार संसार की उस अद्भुत खोज की ओर उनकी यात्रा प्रारम्भ होती है जिसे हम विज्ञान कहते हैं।

ज्योत्सना वीजापुरकर, होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र (होमी भाभा सेन्टर फॉर साइन्स ऐजुकेशन), टीआईएफआर के अध्यापक-मण्डल में हैं। वर्तमान में उनका मुख्य प्रोजेक्ट, कक्षा की गहन शोध पर आधारित पाठ्यक्रम की रूपरेखा बनाना और उसे क्रियान्वित करना है। उनसे इस पते पर सम्पर्क किया जा सकता है : jvijapurkar@gmail.com

---

साकार से निराकार की ओर

जी.एस.जयदेव

मैं वास्तव में गणित से नफरत नहीं करता। पर लम्बे समय तक मैं यह मानता रहा कि कई विभिन्न कारणों से मुझे इस विषय से नफरत थी। सबसे ठोस कारण तो वह विधि थी जिससे गणित पढ़ाया जाता था। खासकर तानाशाह अध्यापक और उसकी छड़ी ने गणित को बहुत डरावना विषय बना दिया था। लगभग चालीस वर्ष बाद पीछे मुड़ कर देखने के बाद मुझे समझ में आया कि गणित को अच्छे से सीखने के लिए मैं निश्चित रूप से काबिल था। यह मेरा दुर्भाग्य रहा कि स्कूल में हर दूसरी घटना मुझे यह मानने को मजबूर कर देती थी कि मैं कभी गणित नहीं सीख सकता। इसमें मेरे सभी शुभचिन्तकों की गहरी सहानुभूति भी शामिल थी।

क्या गड़बड़ी हुई? असल में इस प्रश्न का उत्तर बहुत आसान है। संख्याएँ कभी भी किसी वास्तविक स्थूल वस्तु को नहीं दर्शाती थीं। वे तो बस चिन्ह थीं जो जीवन से रहित शून्य में किसी जटिल पहेली के अलग-अलग हो गए टुकड़ों की भाँति तैरती रहती थीं। उन्हें एक साथ रखना क्यों ज़रूरी था इसका कोई कारण पता नहीं था, और यदि रख भी दी जातीं तो भी वे पहले की तरह ही प्राणहीन बनी रहतीं।

विज्ञान का उत्साही विद्यार्थी होने के कारण मैंने बाद में अपने कॉलेज के दिनों में गणित की महत्ता को महसूस किया। लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी। यदि यह मुझे रोज़मर्रा के जीवन के अनुभव से जुड़ी किसी चीज़ की तरह सिखाया गया होता हो तो शायद मैंने इसे सीख लिया होता।

अपने इस अनुभव को ध्यान में रखते हुए, अब मैं अपने साथियों के साथ चामराजनगर के दीनबंधु स्कूल में गणित को बच्चों के लिए अत्यधिक मज़े और मस्ती के साथ सीखने का असली अनुभव बनाने की कोशिश कर रहा हूँ। गणित के पाठ जीवविज्ञान के भेष में प्रस्तुत किए जाते हैं जिससे अनुभव में जीवन्तता आती है।

अलग-अलग प्रकार के द्विबीजपत्रीय बीजों को काँच के जारों में बोया जाता है, ताकि बच्चे एक ही साथ जड़ों और तनों की वृद्धि का अवलोकन कर सकें। बीज फलियों, मटर, हरे चने आदि के होते हैं। प्रतिदिन बच्चे जड़ों और तनों की वृद्धि को मापते हैं, उसको दर्ज करते हैं। यह देखना रोचक होता है कि

शुरुआत में कुछ दालों की जड़ें अपने अंकुरों की तुलना में ज़्यादा तेज़ी से बढ़ती हैं, जबकि लगभग एक हफ्ते में अंकुर जड़ों से ज़्यादा बढ़ जाते हैं।

अवलोकन और दर्ज करने की प्रक्रिया बच्चों को ठीक–ठीक मापने और आँकड़े दर्ज करने के कौशल सीखने का मौका देती है। वे किसी जैविक क्रियाकलाप में विभिन्न संरचनाओं (पैटर्न्स) को पहचानना भी सीखते हैं। साथ ही साथ समान परिस्थिति में परिणामों का अनुमान लगाना भी सीखते चलते हैं। जीव विज्ञान के इस प्रयोग के द्वारा हम गणित से महत्वपूर्ण सम्बन्ध भी स्थापित कर पाते हैं। सेंटीमीटर में दर्ज की गई जड़ों और अंकुरों की वृद्धि संख्याओं के रूप में ही होती हैं। पर ये संख्याएँ निर्जीव नहीं होतीं बल्कि ये किसी जीवन्त घटना को दर्शाती हैं। इन आँकड़ों का इस्तेमाल करते हुए बच्चों ने बार आलेख और रेखा आलेख बनाए। इन आलेखों ने बच्चों के बीच बहुत ही सक्रिय चर्चा के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया। कई प्रश्नों के तैयार उत्तर नहीं थे। इससे हमने यह सीखा कि विज्ञान हमेशा उत्तरों के बारे में नहीं होता, बल्कि उसे ऐसे प्रश्नों के चारों ओर भी बुना जा सकता है जिनके उत्तर कक्षा की परिस्थितियों में तुरन्त नहीं दिए जा सकते।

बार आलेख और रेखा आलेख के बारे में एक प्रश्न था। यदि बार आलेख सब कुछ समझा देता है तो हमें रेखा आलेख की ज़रूरत क्यों होती है? बच्चों को इसका उत्तर स्वयं ही खोजने दिया गया। एक बच्चे ने शीघ्र ही जान लिया कि जहाँ एक ओर बार आलेख घटना की पूरी तस्वीर दिखाता है, वहीं रेखा आलेख प्रेक्षण की अवधि के दौरान हुए परिवर्तनों पर प्रकाश डाल सकता है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला गया कि वक्र आलेख ने केवल अन्तिम परिणाम बताने के बजाय प्रक्रिया को भी प्रतिबिम्बित किया।

यह कहने की ज़रूरत नहीं कि इस प्रयोग में आई संख्याओं ने एक अविस्मरणीय क्रियाकलाप को प्रदर्शित किया। इस कारण इन 'जीवंत बन गई संख्याओं' की सहायता से गणितीय समझ को और बढ़ाया जा सकता है। उन्हीं अंकों का इस्तेमाल अनुपात सीखने के लिए भी किया गया। इन अंकों से जड़ों और तनों की वृद्धि का अनुपात निकाला जा सकता है। यहाँ फिर, अनुपात का अर्थ किसी घट रही क्रिया से जुड़ा रहता है, और इसलिए यह मात्र निर्जीव संख्याओँ का खेल नहीं होता।

> *एक वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में केवल तकनीशियन ही नहीं होता; वह एक बच्चा भी होता है जिसके सामने कोई प्राकृतिक घटना घट रही होती है जो उसे परी कथा के समान प्रभावित करती है।*
>
> *– मेरी क्यूरी*

अनुपात की अवधारणा को समझने के लिए इसी तरह के अन्य प्रयोग करवाए गए। उदाहरण के लिए बच्चों ने एक अभ्यास किया जिसमें उन्हें अलग–अलग आयु–वर्गों के बच्चों के सिर और शरीर की लम्बाई को मापना था। सिर की लम्बाई बहुत ही जल्दी, कहें कि छह या आठ वर्षों में अपने अधिकतम तक पहुँच जाती है। हालाँकि शरीर 18 वर्ष की उम्र तक बढ़ता रहता है। स्कूल के शिक्षकों के सिर और शरीर की लम्बाई को भी मापा गया। इस प्रयोग में भी संख्याएँ निर्जीव नहीं थीं। साथ ही साथ हमने इस पर भी बहस की कि सिर अपनी अधिकतम लम्बाई तक इतनी कम उम्र में विकसित क्यों हो जाता है। जन्म के समय कितनी तंत्रिका कोशिकाएँ रहती हैं? क्या व्यक्ति के पूरे जीवन काल में तंत्रिका कोशिकाएँ बढ़ जाती हैं?

प्राथमिक स्कूल के स्तर पर गणित की ऐसी वैज्ञानिक समझ बच्चों को ठोस नींव प्रदान करती है। इससे वे अपनी शिक्षा के बाद के चरणों में ऊँचे दर्जे के, ज़्यादा जटिल और निराकार गणित तथा विज्ञान को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं।

जी.एस.जयदेव ने 1992 में दीनबन्धु ट्रस्ट (http://www.deenabandhutrust.org) की स्थापना की थी। वर्तमान में उनका दल नेशनल इंस्टीट्यूट फॉर एडवांस्ड स्टडीज़ के साथ मिल कर कर्नाटक के चामराजनगर जिले में प्राथमिक शिक्षा के सुधार के लिए काम कर रहा है। उनसे सम्पर्क करने के लिए ईमेल है: gsjaydev@rediffmail.com

कक्षा में प्रयोगशाला : मन में आविष्कारी सोच

नीरजा राघवन

इसमें कोई सन्देह नहीं कि अच्छी प्रयोगशाला से विज्ञान सीखने और सिखाने, दोनों में भरपूर मदद मिलती है, और दोनों प्रक्रियाएँ समृद्ध होती हैं। यह बात निर्विवाद रूप से सत्य है। लेकिन भरी–पूरी प्रयोगशाला के बिना भी विज्ञान के सीखने और सिखाने के ढंग में रूपान्तरण सम्भव है। बशर्ते कि हम रोज़मर्रा के अनुभवों का, सामान्यतया पूछे जाने वाले प्रश्नों का, आसानी से मिलने वाली सामग्री का और बस थोड़े से औजारों का–जो खरीदना पड़ सकते है–उपयोग करें।

यदि हम किसी आम विज्ञान कक्षा की शिक्षण–यात्रा का नक्शा बनाएँ, तो वह शायद कुछ ऐसा दिखेगा –

1. शिक्षक पहले निर्धारित पाठ्यक्रम (सिलेबस) पढ़ जाता है।
2. शिक्षक पाठ्यसामग्री के सम्बन्धित अंश पढ़ लेता है।
3. शिक्षक किसी विशेष विषयबिन्दु (टॉपिक) को पढ़ाने के लिए पाठ या पाठों की रूपरेखा बनाता है।
4. शिक्षक निर्धारित पीरियडों में उस विषयबिन्दु को पाठ्यक्रम के अनुसार पूरा पढ़ा देता है।
5. शिक्षक विद्यार्थियों को हल करने के लिए अभ्यासपत्र (वर्कशीट्स) और/या टेस्ट दे सकता है, ताकि उनके सीखने के स्तरों का मूल्यांकन कर सके।

ऊपर दर्शाई गई प्रक्रिया में शिक्षक की भूमिका एक औपचारिक व्याख्याता की होती है, जो यदि अपनी योजनानुसार चलेगा तो निस्संदेह पूरे विषय को कुशलता से पढ़ा देगा। वहीं विद्यार्थी इसमें ज्ञान पाने वाले की निष्क्रिय भूमिका निभाता है। उसे उपस्थित रहकर बस सुनना है। जो भी पढ़ाया जाए उसमें से जितना बन सके उतना स्मृति में संचित कर लेना है, ताकि उसे किसी मूल्यांकन या परीक्षा के दौरान दोहरा सके। यदि शब्दशः दोहरा सके तो और भी अच्छा। यहाँ हमारा ध्यान बरबस इन निम्नलिखित बातों पर जाता है जो इस पद्धति में नदारद हैं: विषय को अनुभव करते हुए सीखना, सहज जिज्ञासा को प्रोत्साहन मिलना, प्रयोगों को करके देखना, प्रेक्षणों को सिलसिले से लिखना, एकत्रित आँकड़ों में कोई तारतम्य या कोई पैटर्न 'देखना', तार्किक दृष्टि से सुसंगत निष्कर्ष निकालना और अन्त में इस रूपान्तरकारी अनुभव से सोच का स्तर बदल जाना।

इनमें से कोई भी बात असम्भव नहीं है। किसी ऐसे स्कूल की चौथी कक्षा के लिए भी नहीं, जहाँ कोई प्रयोगशाला नहीं हो। यह साबित करने के लिए मैं सबसे पहले एक शोधपत्र का सहारा लूँगी जिसमें एक बहुत सरल प्रयोग का वर्णन है। चौथी कक्षा की एक शिक्षिका ने, जिसे अपने विद्यार्थियों को ऊष्मा पढ़ाना था, ऊपर दर्शाई गई पद्धति का रास्ता नहीं चुना। इसके बजाय, उसने (ठण्डे मैसाचुसैट्स में) कक्षा के नौ वर्षीय बच्चों से गरमाहट और ऊष्मा के उन अनुभवों के बारे में पूछकर शुरुआत की जो पिछली नौ शीत ऋतुओं का सामना करते हुए उन्हें हुए थे। (नीचे के बॉक्स का वार्तालाप देखें)

'स्वैटर गरम होते हैं', केटी ने कहा।

'अगर आप किसी हैट के भीतर एक थर्मामीटर रख दें तो क्या वह भी गर्मी दिखाएगा! शायद 90 डिग्री', नील बोला।

'उसे बहुत समय तक उसमें रखा रहने दें तो शायद वह 100, या फिर 200 डिग्री तक चढ़ जाएगा', क्रिश्चियन ने कहा।

बच्चों की पूर्वधारणाओं से ऐसा सीधा–सीधा सामना होने पर उस शिक्षिका ने तय किया कि वह कक्षा को स्वयं इनमें से हर धारणा का परीक्षण करने देगी। इसके लिए उसने बच्चों को हैटों में, स्वैटरों में, और यहाँ तक कि गोल लपेटे गए एक कालीन में भी थर्मामीटर रखने दिए। जब बच्चों ने तापक्रम की पहली कुछ रीडिंगों में कोई अन्तर नहीं पाया, तो उन्हें लगा कि ज़रूर थर्मामीटरों को ज़्यादा समय तक इन चीज़ों में रखना होगा। (किसी मान्यता को छोड़ने में हमें जिस मानसिक प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है, उसे यहाँ उस कक्षा की कल्पना करके महसूस किया जा सकता है।) इसलिए उन्होंने थर्मामीटरों को उस रात वैसे ही रहने दिया। अगले दिन लौटने पर उन्हें पूरा यकीन था कि उनके तापमान बहुत ऊँचे होंगे। पर उन्हें कोई खास बदलाव नहीं दिखाई दिया। शिक्षिका चाहती तो वह यहाँ इस सिलसिले को रोककर, उनकी धारणाओं को सुधारती और समझाती कि तापमान क्यों नहीं बढ़े। पर शिक्षिका ने बच्चों को ही यह निर्णय करने दिया कि वे अपनी गलती स्वीकार करें, और उस पर विचार करना, परीक्षण करना और अपने विचारों पर आपस में बहस करना जारी रखें, जब तक कि वे खुद भीतर से अपनी गलत धारणा को छोड़ने और नया ज्ञान ग्रहण करने के लिए तैयार नहीं हो गए।

इस कक्षा के बारे में खास बात क्या है? सबसे पहले तो शिक्षिका का जोर निर्धारित पाठ्यक्रम निपटाने पर कम था और विद्यार्थियों की बनी–बनाई धारणाओं को उधेड़ने पर अधिक। फिर उसने समझदारी दिखाते हुए हर बच्चे की मान्यता का परीक्षण होने दिया। धैर्यपूर्वक इंतज़ार किया कि वे अपनी मान्यताओं के गलत होने के बारे में आश्वस्त होकर ही उन्हें छोड़ें।

इस तरह उसने ज्ञान को अपनी सहज गति से बच्चों के मन में उतरने दिया।

यहाँ मैं शिक्षकों के शिकायती प्रतिवाद की कल्पना कर सकती हूँ: 'हर टॉपिक के लिए यह सब करना हमारे लिए सम्भव नहीं है! इस तरह तो हम कभी भी पाठ्यक्रम समाप्त नहीं कर पाएँगे!' हाँ, शायद न कर पाएँ, परन्तु हो सकता है कि आपको फिर से वह सब करने की ज़रूरत न पड़े, और शायद इससे आपको सुखद आश्चर्य भी हो। इसका कारण है कि बच्चों को खुद अपनी धारणाओं की जाँच करने की पूरी प्रक्रिया से गुजरने देने में उन्होंने बहुत कुछ सीखा जो तब उनके बहुत काम आएगा, जब अगले टॉपिक को **खोजने** की बारी आएगी! (निपटाने की नहीं)। **सच तो यह कि दक्षता से अपना काम पूरा करने के नाम पर सारे पाठ्यक्रम को पढ़ा डालने से बच्चों के सोचने के ढंग में कोई परिवर्तन नहीं होता। तब कोई विज्ञान पढ़ाने का दावा कैसे कर सकता है?** दूसरी बात, कि वैज्ञानिक सोच और रोज़मर्रा के जीवन का अन्तर्सम्बन्ध इस कक्षा में इतनी सजीवता से उभरता है कि वैज्ञानिक सोच वाला अध्याय (जो सामान्यतया पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग होता है) अलग से पढ़ाने की कोई ज़रूरत नहीं रह जाती। और क्या इस तरह 'कवर (पूरे)' किए जाने वाले हिस्से की लम्बाई थोड़ी घट नहीं जाती?

साइन्स कम्यूनिकेटर्स फोरम (एससीएफ) ने वैज्ञानिक अवधारणाओं को समझाने के लिए कई कम लागत के तरीके ईजाद किए हैं। उदाहरण के लिए, प्रिज्म के महँगे होने के कारण, एससीएफ के सदस्य उसके स्थान पर काँच का पानी भरा गिलास लेते हैं, और एक सस्ती लेजर टॉर्च का प्रकाश उसमें से गुजारकर प्रकाश का आन्तरिक परावर्तन दिखाते और समझाते हैं। इसी तरह ज़मीनी हवा और समुद्री हवा की अवधारणा समझाने के लिए धातु का ट्यूम्बलर गिलास लेकर उसमें एक तरफ थोड़ा पानी और दूसरी तरफ थोड़ी रेत भरी जाती है। फिर उसे धूप में रख देते हैं और रेत तथा पानी के बीच के विभाजन पर एक अगरबत्ती जलाकर खोंस देते हैं। जब रेत और पानी गरम हो जाते हैं तो अगरबत्ती के धुंए के बहने से हवा की दिशा का पता चलता है। इस तरह विद्यार्थी ज़मीनी हवा और समुद्री हवा के उत्पन्न होने के बुनियादी कारणों के बारे में सीखते हैं। स्रोत: http://timesofindia.indiatimes.com/Education/Beyond_the_chalk_talk_method_of_teaching/articleshow/3935253.cms टाइम्स ऑफ इंडिया 5 जनवरी 2009, बियॉंड द चॉक–टॉक मैथड ऑफ टीचिंग

यह देखना महत्वपूर्ण है कि सोचने के ढंग में बदलाव तभी होता है जब शिक्षक विज्ञान को एक 'क्रिया' की तरह अधिक देखने लगता है, और एक 'संज्ञा' की तरह कम। यानी वह कोई चीज़ न रहकर एक गतिविधि बन जाती है। शिक्षक बच्चों को उनकी मान्यताओं को पहचानने के लिए

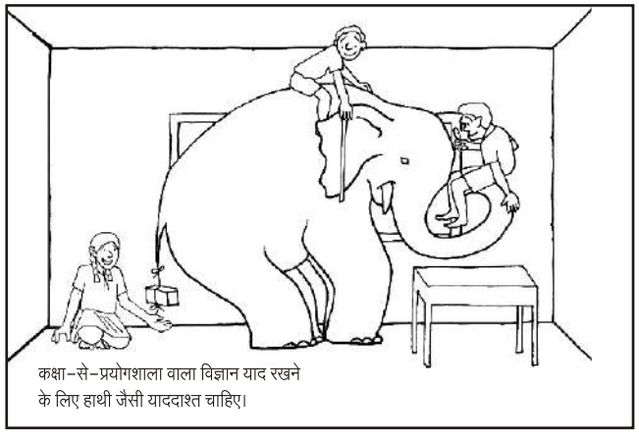

कक्षा–से–प्रयोगशाला वाला विज्ञान याद रखने के लिए हाथी जैसी याददाश्त चाहिए।

प्रेरित करने और उन्हें उनकी स्वयं की धारणाएँ बनाने की जगह देता है। जो हम तब कतई नहीं करते जब हमारा ध्यान केवल पाठ्यक्रम पूरा करने पर केन्द्रित रहता है। फिर जब हम बच्चों से उनकी इन मजबूत मान्यताओं की जाँच करवाते हैं, तो हम उन्हें उस सुरक्षित ज़मीन पर छोड़ रहे होते हैं जहाँ वे आश्वस्त और निर्भय महसूस करते हैं। घबराने के बजाय वे आत्मविश्वास के साथ अपनी–अपनी मान्यता का परीक्षण करते हैं। क्या इसके बाद ऐसे बच्चों से यह आशा करना फिजूल होगा कि वह परीक्षण की कसौटी के इस अभ्यास को अपने अन्य मज़बूत विश्वासों पर लागू नहीं करेंगे, उन पर भी जिनका सम्बन्ध कक्षा से बाहर के संसार से है? कतई नहीं! इसलिए सोचने की इस प्रक्रिया को विज्ञान की कक्षा में लाने की बड़ी सार्थकता है। और कम से कम कक्षा 4 और 5 के स्तर पर तो इसके लिए कोई बड़ी हाई–फाई (साज–सामान वाली) प्रयोगशाला भी नहीं चाहिए।

यहाँ आगे *पत्ती* के उदाहरण के द्वारा **निरीक्षण करने, प्रश्न पूछने** और **विचार करने का कौशल** विकसित करने के लिए सुझाए गए कुछ तरीकों का वर्णन किया गया है।

यहाँ यह महत्वपूर्ण है कि शिक्षक पढ़ाए जाने वाले विषय (इस उदाहरण में पत्तियाँ और पौधे) पर जिन वैज्ञानिकों ने काम किया है उनमें से कुछ के नाम और जीवनियों की जानकारी के साथ कक्षा में जाए। ताकि वह बच्चों द्वारा पूछे गए सवालों में से कुछ को उन सवालों से जोड़ सके जो वैज्ञानिकों ने विभिन्न युगों में पूछे। वैज्ञानिकों के बारे में कुछ कहानियों से शुरू करके शिक्षक को बताना चाहिए कि वैज्ञानिक चीज़ों को कैसे देखते थे, और फिर कैसे प्रश्न पूछते थे, जैसे कि बच्चे अभी कक्षा में पूछ रहे हैं। (ऐसी कहानियाँ विभिन्न सन्दर्भ स्रोतों से प्राप्त की जा सकती हैं। ऐसे कुछ स्रोतों की चर्चा इस अंक में अन्यत्र की गई है।) उदाहरण के लिए, पत्ती के बारे में कुछ प्रश्न और उनसे जुड़े कुछ वैज्ञानिकों और खोजों की जानकारी, (जिसे इन्टरनेट से हासिल करने में इस लेखिका को दस मिनिट से भी कम समय लगा) यहाँ प्रस्तुत है–

■ एक ऑर्किड का अध्ययन करते समय वनस्पति शास्त्री रॉबर्ट ब्राउन (1831) ने कोशिकाओं के भीतर एक संरचना की पहचान की, जिसे उसने 'नाभिक' का नाम दिया।

■ 1770 के दशक में, यान इंजेनहाउज़ ने खोजा कि छाया की अपेक्षा धूप के प्रति पौधों की प्रतिक्रिया भिन्न प्रकार की होती है, और इसी खोज के आधार पर 'प्रकाश–संश्लेषण (फोटोसिंथेसिस)' की समझ का जन्म हुआ।

■ 15वीं शताब्दी के बाद संसार की खोज के समुद्री अभियानों पर जाने वाले प्रारम्भिक यूरोपीय अन्वेषकों ने गौर किया कि तुलनात्मक रूप से ऊष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में बहुत अधिक विविधता वाली प्रजातियाँ पाई जाती हैं। ऐसा क्यों है? (इस सवाल के उत्तर से ही आज के वैज्ञानिकों को पृथ्वी पर जीवन की रक्षा करने में मदद मिलती है।)

निरीक्षण कौशल को क्रमशः और पैना बनाने के लिए दिशानिर्देश: (इन निर्देश–बक्सों का क्रमशः गहराता हुआ रंग निरीक्षण की बढ़ती हुई प्रखरता दर्शाता है)। हम एक पत्ती का उदाहरण ले रहे हैं–

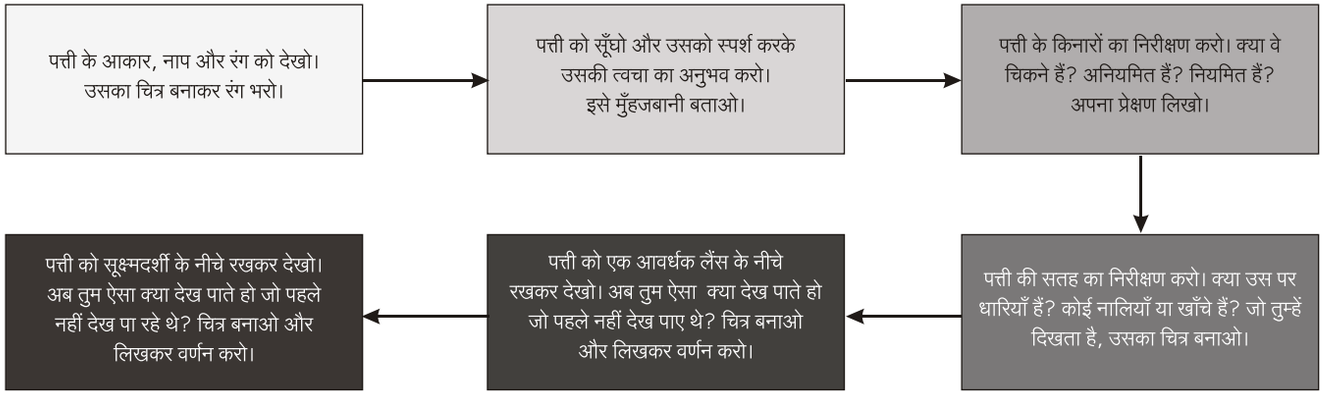

प्रश्न पूछने के कौशल को *क्रमशः* अधिक धारदार बनाने के लिए दिशा–निर्देश: *पत्ती* के उदाहरण में जो प्रश्न उठाए जा सकते हैं या जिन पर चर्चा की जा सकती है, वे कुछ इस प्रकार के हो सकते हैं:

- इस पत्ती का आकार ऐसा क्यों है?
- इस पत्ती के उपयोग क्या हैं?
- यह कब उगती है?
- यह कहाँ उगती है?
- यह कब मर जाती है?
- इसे बढ़ने के लिए किस चीज़ की आवश्यकता होती है?
- इसमें गन्ध क्यों है/ क्यों नहीं है?
- क्या मेरी तरह इसके भी भाई–बहन होते हैं?
- क्या मेरी तरह यह भी एक परिवार का हिस्सा है?
- यह पत्ती किस चीज़ से बनी है?
- क्या हम इसे खा सकते हैं?
- इस पत्ती को कौन खा सकता है?
- क्या समय बीतने के साथ–साथ इसके आकार, नाप और रंग में परिवर्तन होता है?
- क्या अलग–अलग तरह की मिट्टी में उगाने से इसके आकार, नाप या रंग को बदला जा सकता है?
- क्या कीड़ों को इस पर सोना, या इसको खाना अच्छा लगता है?
- हम पत्ती की कीड़ों से या जानवरों से कैसे रक्षा कर सकते हैं?

इसी तरह के अन्य सवाल भी पूछे जा सकते हैं।

एक चेतावनी: सही उत्तर पर पहुँचने की जल्दबाजी में, जो आमतौर पर अनुभव की जाती है, अक्सर कोई मेधावी प्रश्न छूट जाता है। या कई बार लगातार प्रश्न पूछने वाले को नजरअन्दाज़ कर दिया जाता है, और यह अभ्यास सिर्फ सही या गलत उत्तरों पर निशान लगाने की कवायद बनकर रह जाता है। इसलिए मैं पुरजोर सिफारिश करूँगी कि निरन्तर प्रश्न पूछने वालों को सत्र के अन्त तक प्रोत्साहन देते रहकर प्रश्नों की बाढ़ को बनाए रखना चाहिए।

विचार करना: प्रश्नों की बाढ़ के उपरान्त, एक अच्छा मौका हो सकता है (कक्षा की दिलचस्पी और समझ के स्तर को ध्यान में रखते हुए) कि बच्चों में चर्चा के द्वारा जिज्ञासा की आग को थोड़ा और तेज़ किया जाए। प्रश्न करने की शाश्वत वैज्ञानिक परम्परा में बच्चों को शामिल करने की प्रक्रिया का यह महत्वपूर्ण अंग है कि उनके द्वारा पूछे गए प्रश्नों को पहले के प्रश्नों या खोजों से या अभी के अज्ञात पहलुओं से जोड़ा जाए। यहाँ फिर ध्यान देना ज़रूरी है कि **पूछने** के चरण में बच्चों को जल्दी उत्तर देने के लिए ठेलने के बजाय,

सोचने के चरण का खूब इस्तेमाल किया जाना चाहिए। ताकि बच्चे सवालों को अपने भीतर उतर जाने दें, वैसे ही जैसे वे चॉकलेट या टॉफी के साथ करते हैं। वे उसे मुँह में रखकर चूसते हैं और उसके रस को गले में उतरता हुआ महसूस करते हैं! यहाँ खास बात उत्तरों की चिन्ता करना नहीं है, बल्कि हर प्रश्न पर मुक्त, निर्भय ढंग से विचार करना है, और शायद इसके लिए और भी प्रश्न पूछना पड़ें।

हमारे मन में प्रश्न हमारी अपनी समझ और ज्ञान के धरातल से उठते हैं। इसलिए शिक्षक के लिए बेहतर होगा कि वह थोड़ा ठिठककर, पूछे गए सवालों पर निम्नलिखित दृष्टियों से विचार करे, यहाँ हम **पत्ती** का उदाहरण ही जारी रखते हैं:

1. 'यह पत्ती हरी क्यों है?' इस तरह के प्रश्न को शिक्षक अनेक अन्य प्रश्नों से जोड़ सकता है, जैसे कि कोई भी चीज़ रंगीन क्यों दिखती है? क्या हम सभी एक-सा रंग देखते हैं? हर व्यक्ति में रंग को देखने की क्षमता किस चीज़ से आती है? आदि। इस तरह बच्चों से प्रश्नों की एक शृंखला बनाने को कहा जा सकता है। यह ऐसा है जैसे कि हर सवाल एक बुलबुले में हो और पहले बुलबुले के सवाल से एक के बाद एक और तमाम सवालों के बुलबुले निकलते आएँ।
2. पत्ती के आकार और नाप (लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई) के बारे में उठे प्रश्नों को शिक्षक अपने आकारों और नापों से, तथा पशुओं और सृष्टि के अन्य अंगों से जोड़ सकता है। कक्षा मिलकर किसी प्राणी के आकार/नाप और उसके काम के बीच अन्तर्सम्बन्ध बताने वाली सम्भावित कड़ियों के बारे में विचार कर सकती है। अगर हाथी इतना विशाल न होता तो फिर क्या वह हाथी होता? अगर कटहल इतना बड़ा न होता तो क्या वह फिर भी इतना स्वादिष्ट होता? आदि।
3. 'पत्ती कैसे उगती है?' ऐसे प्रश्नों को प्रकाश संश्लेषण की खोज की कहानी (नीचे दिया गया बॉक्स 1 देखें) से जोड़ा जा सकता है, जिसके लिए शिक्षक को पहले से तैयारी करके कक्षा में जाना होगा।

बॉक्स 1 प्रकाश-संश्लेषण

ज़्यादातर यह टॉपिक ऐसे पढ़ाया जाता है कि लगता है मानो इसका पूरा रहस्य अचानक वैज्ञानिकों के सामने प्रकट हो गया, जैसे कि जादू की छड़ी घुमाने से होता है। पर ऐसा नहीं हुआ था। इस लेखिका ने एक बहुत रोचक वैबसाइट: http://www.juliantrubin.com/bigten/pathdiscovery.html देखी और उससे 20 मिनिट के अन्दर नीचे दी गई जानकारी निकाली। शिक्षक के लिए अच्छा होगा कि वह कोई नया टॉपिक शुरू करने से पहले इस तरह की चार, पाँच कहानियाँ इकट्ठी कर ले, ताकि वह उनके द्वारा बच्चों के भीतर सोए वैज्ञानिक को जगा सके।

क्या पौधों की ऊर्जा का स्रोत पानी होता है?

प्रयोग 1

यान बापटिस्टा वान हेलमोन्ट, फ्लैमिश चिकित्सक, रसायनशास्त्री, भौतिकशास्त्री ने सन 1600 में एक बड़े गमले में पाँच वर्ष तक एक विलो का पेड़ उगाकर एक प्रयोग किया। इस अवधि में समय में पेड़ की मात्रा में 74 किग्रा की वृद्धि हो चुकी थी, परन्तु मिट्टी की मात्रा में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ था। वान हेलमोन्ट का विश्वास था कि पानी ही पौधे की जीवनशक्ति का और उसकी बढ़ी हुई मात्रा का स्रोत था। इसकी अन्य सम्भावनाएँ क्या हो सकती थीं? आप उन सम्भावनाओं में से हरेक का परीक्षण कैसे करेंगे?

(ऐतिहासिक दृष्टि से जो प्रयोग हुए उनकी क्रमिक शृंखला नीचे दी जा रही है।)

प्रयोग 2

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के एक प्राध्यापक और चिकित्सक जॉन वुडवर्ड ने 1600 के अन्तिम वर्षों में एक प्रयोग रचने की कोशिश की। वह वान हेलमोन्ट की इस परिकल्पना की जाँच करना चाहता कि पेड़ की बढ़ी हुई मात्रा का स्रोत पानी था। प्रयोगों की 77 दिन तक चली शृंखला के दौरान वुडवर्ड ने पौधों के द्वारा ग्रहण किए गए पानी को मापा। उदाहरण के लिए, एक पौधे की मात्रा लगभग 1 ग्राम बढ़ी, जबकि वुडवर्ड ने कुल मिलाकर लगभग 76000 ग्राम पानी सात दिनों में पौधे के विकास के लिए दिया था – और यह आम परिणाम था। वुडवर्ड ने सुझाया, और सही सुझाया, कि अधिकांश पानी, ''पौधों द्वारा खींचा जाकर पत्तियों के छिद्रों से वातावरण में वापस छोड़ दिया गया।'' इसलिए यह धारणा कि पौधों द्वारा उपयोग किया गया पोषक तत्व पानी था, खारिज कर दी गई। (शिक्षक इस प्रयोग का वर्णन करके विद्यार्थियों से निष्कर्ष निकालने को कह सकते हैं।)

पौधों की हवा से पारस्परिक क्रिया

अगस्त 1771 में एक अंग्रेज़ रासायनशास्त्री जोसेफ प्रीस्टले ने एक पारदर्शी आवरण से घिरी खाली जगह में पुदीने की टहनी के साथ जलती हुई मोमबत्ती रखी। मोमबत्ती ने हवा (तब तक ऑक्सीजन की खोज नहीं हुई थी) को या हवा के एक खास हिस्से को जलाकर खत्म कर दिया, और फिर खुद भी बुझ गई। इसके 27 दिन बाद उसने बुझी हुई मोमबत्ती को फिर से जलाया और वह उसी हवा में खूब अच्छे से जलती रही, जो हवा पहले जलने में मदद नहीं कर पाई थी। पर घिरी हुई बन्द जगह के अन्दर रखी मोमबत्ती को प्रीस्टले कैसे जला पाया? उसने एक दर्पण से सूर्य की किरणों को उस मोमबत्ती के धागे पर

केन्द्रित किया (प्रीस्टले के पास प्रकाश का कोई तीव्र स्रोत न होने के कारण उसे सूर्य पर निर्भर रहना पड़ा)। आज ज़रूर हम ऐसी मोमबत्ती जलाने के लिए अधिक विकसित तरीके इस्तेमाल कर सकते हैं, जैसे कि किसी तीव्र प्रकाश स्रोत की किरणों को लैंस से उस पर केन्द्रित करके या फिर बिजली की चिन्गारी से। प्रीस्टले ने इस तरह सिद्ध किया कि पौधे किसी प्रकार से हवा का संघटन, अर्थात्त उसमें शामिल चीज़ों को, बदल देते हैं।

1772 में किए गए एक अन्य प्रयोग में प्रीस्टले ने एक बन्द जार में एक चूहे को रखा। चूहा कुछ दिनों बाद मर गया। पर उसने पाया कि चूहे को एक पौधे के साथ रखने पर वह ज़िन्दा रहता है। हालाँकि हम इस प्रयोग को दोहराने की और निर्दोष पशुओं को चोट पहुँचाने की राय नहीं देते। (शिक्षक प्रयोग का वर्णन करके विद्यार्थियों से निष्कर्ष निकालने को कह सकते हैं।)

पौधे और प्रकाश

यान इंजेनहाउज़ ने प्रीस्टले के काम को आगे बढ़ाया और दिखाया कि पौधों को ऑक्सीजन बनाने के लिए प्रकाश की ज़रूरत होती है (इसके कुछ वर्ष पहले 1772 में कार्ल विल्हेम शीले द्वारा ऑक्सीजन खोजी जा चुकी थी)। हालाँकि इंजेनहाउज़ की यह धारणा गलत थी कि पौधों द्वारा बनाई गई ऑक्सीजन, कार्बन डाईऑक्साइड से आती थी।

फिर भी, इंजेनहाउज़ यह दिखाने वाला पहला व्यक्ति था कि पौधों की इस प्रक्रिया के लिए, जो 'किसी प्रकार से मोमबत्ती और जानवरों द्वारा दूषित की गई हवा को शुद्ध बनाती है,' प्रकाश नितान्त आवश्यक था।

1779 में, इंजेनहाउज़ ने एक बन्द पारदर्शी जगह में एक पौधा और एक मोमबत्ती रखी। उसने इन्हें दो–तीन दिन तक धूप में रखा। इससे निश्चित हो गया कि भीतर की हवा मोमबत्ती के जलने लायक शुद्ध हो गई होगी। परन्तु उसने मोमबत्ती नहीं जलाई। इसके बाद, उसने इस पूरी व्यवस्था को एक काले कपड़े से कई दिनों तक ढका रहने दिया। फिर जब उसने मोमबत्ती जलाने की कोशिश की तो वह नहीं जली।

इंजेनहाउज़ ने निष्कर्ष निकाला कि ज़रूर अन्धेरे में पौधे ने किसी प्रकार जानवर जैसी क्रिया की होगी। उसने ज़रूर साँस लेकर हवा को दूषित कर दिया होगा। और हवा को शुद्ध करने के लिए पौधों को रोशनी की आवश्यकता होती है। (शिक्षक प्रयोग का वर्णन करके विद्यार्थियों को निष्कर्ष निकालने के लिए कह सकते हैं।)

नीरजा राघवन, पीएच.डी., अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, बंगलौर में ऐकेडमिक्स और पैडागॉजी की सलाहकार हैं। उन्होंने रसायन शास्त्र में अपनी डॉक्ट्रेट अमेरिका के प्रिंस्टन विश्वविद्यालय में पूरी की। शिक्षा के क्षेत्र में दस वर्षों से अधिक काम के अनुभव के साथ–साथ कई वर्षों तक वे स्वतंत्र लेखिका भी रही हैं। प्रमुख अखबारों तथा पत्रिकाओं में उनके 70 से अधिक लेख प्रकाशित हैं। वे एनसीईआरटी सिलेबस रिव्यू कमेटी और टैक्सटबुक डिवैलपमैन्ट कमेटी 2006 की सदस्य भी रही हैं। उनसे सम्पर्क के लिए ईमेल पता है: neeraja@azimpremjifoundation.org

बच्चों के लिए विज्ञान को रोचक कैसे बनाएँ

यास्मीन जयतीर्थ

बच्चों के लिए विज्ञान को रोचक बनाने की बात करने से पहले कुछ बुनियादी प्रश्न पूछने की आवश्यकता है – विज्ञान रोचक न हो, यह कैसे हो सकता है? और, स्कूल का विज्ञान नीरस और उबाऊ क्यों होता है?

पहले प्रश्न का उत्तर देने के लिए विज्ञान की परिभाषा इस प्रकार कर सकते हैं कि यह इन्द्रियों के द्वारा, या इन्द्रियों की क्षमता का विस्तार करने वाले उपकरणों के द्वारा ब्रम्हाण्ड का निरीक्षण है। इसके बाद, ब्रम्हाण्ड जिस तरह काम करता है हम उसके मॉडल बनाते हैं। इस परिभाषा को देखते हुए यह समझना मुश्किल है कि कैसे विज्ञान रोचक नहीं हो सकता! यह तो वैसी ही आनन्ददायी खोज है जैसी सभी शिशु और बच्चे करते हैं। वे इधर–उधर रेंगते हुए, चीज़ों को देखते हैं, उन्हें उठाते हैं, फेंकते हैं, उनका स्वाद लेते हैं और अपने निरीक्षणों से सीखते हैं। मेरे परिचित एक बच्चे ने अभी–अभी सीखा है कि हर चीज़ पटकने पर उछलती नहीं। साल दर साल, इस सीखने के विस्तार में चीज़ों के अन्तर्सम्बन्ध और अमूर्त बातें शामिल होती जाती हैं।

जहाँ तक दूसरे प्रश्न के उत्तर का सम्बन्ध है, पूरी शिक्षा व्यवस्था पर ही सवाल ना उठाकर (यद्यपि उत्तर अन्ततः इस पर ही निर्भर करता है), यह पूछना ज़रूरी है कि, 'जब हम पाठ्यपुस्तकों के द्वारा विज्ञान पढ़ाते हैं तो हम क्या पढ़ाने की कोशिश कर रहे होते हैं?' सबसे पहले तो विज्ञान और तकनीक (टैक्नोलॉजी) के बीच में भ्रम की स्थिति है। दूसरे, इसको लेकर भी भ्रम है कि वैज्ञानिक साक्षरता में क्या निहित है, अर्थात विज्ञान 'प्रक्रिया' है या 'विषयवस्तु?' तीसरे, हमारी पाठ्यपुस्तकों में हमने अपेक्षाकृत सरल सामग्री को छोड़कर काफी आगे की सामग्री को शामिल कर लिया है, जिसके लिए बच्चों के वर्तमान ज्ञान में ठीक आधार नहीं होता। उदाहरण के लिए, दसवीं की निर्धारित एसएसएलसी पाठ्यपुस्तक में रॉकेट का समीकरण और

रॉकेटों तथा उपग्रहों की चर्चा थी, जबकि न तो न्यूटन के गति के नियम पूरे समझाए गए थे और न ही गणित में लघुगणक (लॉगरिथ्म) पढ़ाए गए थे।

विज्ञान को *प्रक्रिया* की तरह पढ़ाने में, जिसके द्वारा विद्यार्थी *विषयवस्तु* सीखते हैं, अधिकांश ऐसी कठिनाई से छुटकारा मिल जाएगा जिसका सामना इस विषय को सीखने में विद्यार्थी करते हैं। कठिनाई यह कि इस विज्ञान का उनके परिचित संसार से कोई सम्बन्ध नहीं दिखता और बिना जुड़ाव के अलग-थलग तथ्यों को याद रखना कठिन होता है। खोज की पद्धति का अनुसरण करने वाली कुछ उत्कृष्ट पुस्तकेंऔर कार्यक्रम उपलब्ध हैं। एकलव्य के कार्यक्रम, होमी भाभा साइन्स सेन्टर की स्मॉल साइन्स सीरीज की किताबें (इन किताबों की समीक्षा के लिए पृष्ठ 62 देखें), और एनसीईआरटी की प्राथमिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तकें इनके कुछ उदाहरण हैं। ये स्कूलों में व्यापक तौर पर नहीं अपनाई गई हैं। मेरी राय में, इनमें एक दोष है – वह यह कि इनके आधार पर आसानी से मूल्यांकन करना सम्भव नहीं है। खोज की पद्धति से विद्यार्थियों ने जो सीखा है, उसके लिए परीक्षाएँ बनाना कठिन है, क्योंकि उसमें कोई ऐसे तथ्य नहीं होते जिन्हें दोहराया जा सके। पर जिस दोष का मैंने उल्लेख किया, वह किताबों का नहीं बल्कि स्वयं मूल्यांकन व्यवस्था का है। हम जिस तरह पढ़ाते हैं और सीखते हैं उसमें कोई आमूल परिवर्तन तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि हम पढ़ाने और सीखने के मूल्यांकन के ढंग में आमूल परिवर्तन नहीं करते, और यह अपने आप में एक खोज का विषय है।

> आप किसी मनुष्य को कुछ सिखा नहीं सकते, आप केवल उसके स्वयं के भीतर वह खोज लेने में उसकी मदद कर सकते हैं।
>
> – गैलिलियो गैलिली

बहुत संक्षेप में कहें तो विद्यार्थियों को सार्थक और रोचक लगने के लिए कक्षा में विज्ञान का दृष्टिकोण प्रयोगात्मक होना चाहिए। विज्ञान शिक्षक कई कारणों से कक्षा में विज्ञान पढ़ाने के लिए प्रयोगात्मक पद्धति अपनाने के बारे में आशंकित हो सकते हैं। प्रयोग खर्चीले होते हैं, कक्षा की व्यवस्था गड़बड़ाती है, खतरे की सम्भावना हो सकती है, और वे बहुत समय लेते हैं। फिर भी, वास्तविकता यह है कि स्कूल स्तर का अधिकांश विज्ञान वाकई में प्रयोगात्मक प्रकृति का होता है, और इस दृष्टिकोण से उसका ज्ञान हासिल करना अपेक्षाकृत आसान होता है। यह तथ्य, कि सोडियम एक चाँदी-सी चमकीली धातु है जो पानी से उग्र रूप से प्रतिक्रिया करती है, पढ़ देने की अपेक्षा इसे वस्तुतः दिखाना अधिक समझदारी की बात है। इसके प्रदर्शन की नाटकीयता के कारण तथ्यों को याद रखना भी ज़्यादा आसान हो जाता है।

इससे भी अधिक महत्व की बात यह है कि जब हम प्रयोगों के द्वारा विज्ञान सिखाते हैं तो विद्यार्थी कई महत्वपूर्ण कौशल भी सीखते हैं। वे अपने हाथों से काम करने का, निरीक्षण करने का, और आँकड़े एकत्रित करने का कौशल सीखते हैं और भी गहरे स्तर पर। वे सीखते हैं कि किसी प्रक्रिया के बारे में विचार करना और उसे कार्यान्वित करके परिणाम तक पहुँचाना, दोनों बिलकुल अलग-अलग बातें हो सकती हैं। इससे ऐसे लोगों के बारे में, जो जीविका के लिए अपने हाथों से काम करते हैं, न केवल उनका नजरिया वास्तविक बनेगा, बल्कि वे ऐसे लोगों का आदर करना भी सीखेंगे। वे सीखेंगे कि किसी वक्तव्य को वैसे ही स्वीकार नहीं करना चाहिए; उनके मन में तत्काल यह प्रश्न उठेंगे कि 'कैसे' और 'क्यों'।

मोटी-मोटी बातों की चर्चा करने के बाद, कोई ऐसा शिक्षक जिसके पास बड़ी कक्षा हो, और जो पाठ्यपुस्तकों से बँधा हो, क्या कर सकता है? ऐसे में, प्रक्रिया की तरह से विज्ञान को कई प्रकार से लाया जा सकता है।

पहले तो हम पाठ्य सामग्री को दैनिक अनुभवों से जोड़ सकते हैं। प्राथमिक और माध्यमिक स्तरों पर यह बहुत कारगर होता है। कर्नाटक में कक्षा 5 की प्रचलित पाठ्यपुस्तकों में लीवर्स पर एक पाठ है जिसमें लीवरों और उनकी विभिन्न श्रेणियों को प्रयास, बोझ और आलम्ब की सहायता से पारिभाषित किया गया है। शिक्षक लीवरों के उदाहरण दे सकता है, विद्यार्थियों को स्वयं पता लगाने दे सकता है कि लीवर क्या करते हैं। उनसे निरीक्षण करके दैनिक जीवन में लीवरों के उपयोग के उदाहरणों के साथ कक्षा में वापस आने को कह सकता है। ये साधारण टेक वाली क्रोबार (लोहे की छड़) से लेकर, बोतल का ढक्कन खोलने वाला औजार या चक्की आदि तक हो सकते हैं। फिर, एक उत्साहपूर्ण चर्चा स्वतः शुरू हो जाएगी।

दूसरे, हम किसी खोज की कहानी सुनाकर भी विषय से सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। किसने खोज की, कब, क्या प्रयोग किए गए तथा खोज का क्या अर्थ और क्या महत्व था? मैं परमाणु की संरचना इसी तरीके से पढ़ाती हूँ। उसकी रूपरेखा इस प्रकार रहती है – डाल्टन का परमाणु का मॉडल और उनकी आधार-मान्यताएँ, बुन्सन और किर्चोफ के फ्लैम टेस्ट, गुणों पर आधारित मेन्डलीव का आवर्ती क्रम, रेडियो धर्मिता की खोज (यह व्यक्तित्वों और कहानियों का बड़ा स्रोत है), थॉमसन का परमाणु मॉडल, रदरफोर्ड के प्रयोग और उन पर आधारित उनका बनाया मॉडल, और बोह्र का मॉडल तथा फ्लैम टेस्ट से उसका सम्बन्ध। इससे पूरी तस्वीर सामने आ जाती है कि वर्तमान मॉडल कैसे विकसित हुआ, अतः उसकी कल्पना करना, याद रखना, और उसका उपयोग करना ज़्यादा आसान हो जाता है। यह पूरी कहानी सुनाने में मुझे छः पीरियड लगते हैं। फ्लैम टेस्ट वास्तविक प्रयोग की तरह ही किए जाते हैं।

तीसरा है, प्रदर्शन करके दिखाना। ऐसे प्रयोगों का प्रदर्शन किया जाएगा जो खतरनाक हो सकते हैं। जिनमें महँगी सामग्री उपयोग होती हो या जहाँ चर्चा के प्रवाह को बनाए रखना हो। ऊपर चर्चित फ्लैम टेस्ट का मैं प्रदर्शन करूँगी,

और हो सकता है कि इसमें विद्यार्थियों को बुलाकर उनसे लवणों को चिमटी से पकड़कर ज्योति में रखने को कहूँ।

चौथा है, बहुत छोटे पैमाने पर आसानी से उपलब्ध सामग्री से छोटे प्रयोग करना। उदाहरण के लिए स्याही भरने के ड्रॉपरों और प्लास्टिक शीटों का उपयोग करना, ताकि विद्यार्थी उसे अपनी डेस्क पर कर सकें। (बॉक्स 2 देखें)

पाँचवां है, प्रायोगिक दृष्टान्त का उपयोग करना। (बॉक्स 1 देखें)

किसी भी विज्ञान के पाठ में उपरोक्त तरीकों का मिलाजुला उपयोग होगा। इस पद्धति में शिक्षक के ऊपर बहुत ज़िम्मेदारी रहती है। उसे निरन्तर ऐसे प्रश्नों पर विचार करना पड़ता है, जैसे कि 'इस अवधारणा को मैं उदाहरण से कैसे समझा सकता हूँ?', 'कौन–सा सरल प्रयोग कारगर होगा?', 'रोज़मर्रा के जीवन में अच्छा उदाहरण क्या है?' आदि। वस्तुतः मैं अभी भी किसी ऐसे सरल प्रयोग की तलाश में हूँ जिससे बॉयल के नियम को मात्रात्मक ढंग से प्रदर्शित किया जा सके।

प्रयोगों के लिए और सरल उपकरण बनाने के लिए, अच्छे स्रोत हैं: इन्टरनेट, कॉलेज की पाठ्यपुस्तकें , लोकप्रिय विज्ञान पुस्तकें , विज्ञान शिक्षण पर यूनिसेफ की मार्गदर्शिका और सबसे महत्वपूर्ण है शिक्षक स्वयं। विज्ञान को मज़ेदार बनाने में बहुत मेहनत लगती है, परन्तु इससे गहरी संतुष्टि प्राप्त होती है। यह शिक्षक के कक्षाएँ लेने के आनन्द को दुगना कर देता है। पर एक सावधानी बरतें – प्रयोगों को कक्षा में करने के पहले एक बार परख लें, क्योंकि कभी–कभी हो सकता है वे आशा के अनुरूप काम न करें। अनेक

बॉक्स 1 : मोल की अवधारणा को दर्शाना

मोल, कणों की संख्या का माप है और उसे मापी जा सकने वाली मात्रा से जोड़ता है। अधिकांश विद्यार्थियों को इसकी अवधारणा अमूर्त और समझने में कठिन लगती है। अनेक प्रकार के बीज लेकर – जैसे मूँग, दोखली, राजमा, मूँगफली, सूखी मटर आदि – इसके लिए एक समानान्तर प्रायोगिक दृष्टान्त दिया जा सकता है। प्रत्येक किस्म के सौ बीज गिनकर उनकी मात्रा अलग–अलग ज्ञात कर लें। यदि आपको तराजू सुलभ नहीं है, तो मेरे खयाल से पास की किराने की दुकान वाला मदद कर देगा! सबसे हल्के प्रकार के एक बीज की मात्रा की गणना करें और उसे हाइड्रोजन का नाम देकर इकाई मात्रा मान लें। अब आप इस बीज की मात्रा के अनुपात में हर अन्य प्रकार के एक बीज की मात्रा निकाल सकते हैं। फिर आप किसी दी गई मात्रा में किसी प्रकार के कितने बीज होंगे, इसकी गणना कर सकते हैं। इसके बाद आप इस उदाहरण को आगे बढ़ाकर आपेक्षिक परमाणु मात्रा के विचार से जोड़ सकते हैं। यह वैसा ही है जैसे कि किसी बीज की औसत आपेक्षिक मात्रा।

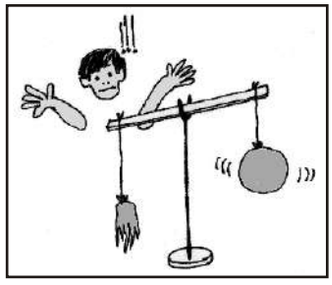

पुस्तकों में यह दर्शाने के लिए कि हवा में भार होता है, एक प्रयोग दिया रहता है। इसमें एक आलम्ब पर रखे रूलर के दोनों सिरों पर एक–एक फूला हुआ गुब्बारा लटकाकर उसे सन्तुलित किया जाता है। अब एक गुब्बारे को पिचका देने पर दूसरे गुब्बारे वाला छोर नीचे झुक जाएगा (ऐसा किताबें कहती हैं), क्योंकि भरा गुब्बारा उसे अधिक भारी बनाता है। पर, यथार्थ में उछाल के कारण भरा गुब्बारा ऊपर उठ जाता है।

बॉक्स 2 : रसायनों का वर्गीकरण – अम्ल, क्षार और संकेतक

किसी विशेष प्रकार के फूल एकत्रित करें। हर बच्चा अलग रंग के फूल चुन सकता है। जैसे हिबिस्कस (जवाकुसुम), विंका (सदाबहार), जैकरैंडा (पादप) या मैरीगोल्ड (गेंदा)। उन्हें थोड़े पानी के साथ कुचल लें और उनका रस निकाल लें। रस को तीन भागों में बाँट लें। पहले भाग में नीबू का रस मिलाएँ और दूसरे में चूने का पानी। यदि रंग में कोई परिवर्तन होता है तो उसका निरीक्षण करें। जिस रस के रंग में सबसे बढ़िया परिवर्तन होता है उसकी काफी मात्रा बना लें। उसे संकेतक की तरह इस्तेमाल करें। विद्यार्थियों से परीक्षण करने के लिए अलग–अलग प्रकार के पदार्थ लाने को कहें। कुछ पदार्थ सुझाए जा सकते हैं, जैसे दूध, दही, संतरे का रस, साबुन, शैंपू, चाय, तेल आदि। एक कक्षा ने पाया कि अम्ल खट्टे होते हैं और क्षार कटु होते हैं। उन्होंने उस प्रयोग को आगे बढ़ाते हुए यह जानने की कोशिश की कि क्या सभी खट्टे पदार्थ अम्ल होते हैं और सभी कड़वे पदार्थ क्षारीय होते हैं?

चित्रांकन : राधिका नीलकान्तन, सेन्टर फॉर लर्निंग, बंगलौर।

यास्मीन जयतीर्थ वर्तमान में सेन्टर फॉर लर्निंग, बंगलौर में शिक्षिका हैं। वे आईआईटी, बम्बई से एम.एससी. और इण्डियन इंस्टीटयूट ऑफ साइन्स, बंगलौर से रसायन शास्त्र में पीएच.डी. हैं। उन्होंने यूनिवर्सिटी ऑफ लुईविल और इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइन्स, बंगलौर में पोस्ट डॉक्टरल कार्य किया है। उनसे इस ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है : spinyarn@gmail.com

एक जिज्ञासु विद्यार्थी के प्रश्न

चीज़ें खुद गरम से ठण्डी हो सकती हैं,
सुना है, वे बिना प्रयास यह करती हैं,
पर वे खुद गरम क्यों नहीं हो जातीं,
ताकि सारा ऊर्जा का खर्चा बचातीं?

ऊपर से चीज़ें ज़मीन पर आती हैं,
गिरकर धम्म से आवाज़ लगाती हैं,
पर जब उछलती हैं वे ऊपर हवा में,
तो क्यों वे लौटती हैं वहाँ से मौन में?

जब ग्रह करते रहते हैं हमेशा यूँ मज़ा
लगाना सूरज का चक्कर भी नहीं सज़ा,
तब क्यों ऐसा है कि सब हम तुम
चल नहीं सकते अगर हों होश गुम

नहीं रह सकता निर्वात देर तक खाली
दौड़कर आएगी हवा बजाती हुई ताली
झटपट भर देगी वह पूरी खाली जगह,
हवा ही जीतती है दौड़, क्या है वजह?

क्यों नहीं हवा बाहर निकल जाती
उस जगह से जहाँ वह रहे समाती
क्यों नहीं छोड़ जाती वह पीछे निर्वात,
तब हवा का हो जाता बराबर हिसाब?

क्या कोई तरीका नहीं है कि हम पाते
ऐसी लता जिसे हम साँप सा उतार लाते,
पेड़ की फुनगी से उतरती नीचे ज़मीन पर,
इतना पता है, वे चढ़तीं हैं हमेशा ऊपर!

ऐसे कई सवालों के चाहिए मुझे जवाब,
एक–एक करके मुझे आप देंगे जनाब
क्या बता सकते हैं कब मुझे ये मिलेंगे
उत्तर जो राहत हम सब के मन को देंगे?

बड़े–बड़े मुश्किल शब्दों का, न करें प्रयोग
ध्यान रखें, चाहती हूँ मैं आप करें उपयोग
आपके भण्डार में हों सबसे सरल शब्द जो
और समझा पाएँ जो मुझे सारी बातों को!

– नीरजा राघवन की मूल अंग्रेज़ी कविता का
हिन्दी रूपान्तरण: राजेश उत्साही

विज्ञान में मूल्यांकन की क्षमता

विष्णु अग्निहोत्री, निश्चल शुक्ला, अपूर्व भण्डारी

विज्ञान में मूल्यांकन की बात करने से पहले, हमें यह समझने की ज़रूरत है कि विज्ञान शिक्षा के लक्ष्य क्या हैं, ताकि हम यह जान सकें कि हमें किस चीज़ का मूल्यांकन करना है। नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क के नेशनल फोकस ग्रुप के दस्तावेज में वैज्ञानिक पद्धति के क्रमिक चरणों की सूची इस प्रकार दी गई है: 'निरीक्षण करना, देखे गए तथ्यों में समानताओं और समरूपी संरचनाओं की खोज करना, अवधारणाएँ बनाना, स्थितियों के गुणात्मक और गणितीय मॉडल गढ़ना, तार्किक ढंग से उनके निष्कर्ष निकालना और प्रेक्षणों तथा नियंत्रित प्रयोगों के द्वारा सिद्धान्तों के सच या झूठ होने की पुष्टि करना'। किसी विषयवस्तु, सच में तो बहुक्षेत्रीय विषयवस्तु, पर कार्य करते हुए इस प्रक्रिया के उपरोक्त कौशलों को विकसित करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, निरीक्षण और समानताओं की खोज करने (जैसा हम समूहों में वर्गीकरण के लिए करते हैं) के दोनों कौशल विभिन्न प्रकार की पत्तियों के साथ काम करते हुए, या काँच, लकड़ी, इस्पात आदि विभिन्न प्रकार के पदार्थों के साथ काम करते हुए विकसित किए जा सकते हैं।

सरल शब्दों में कहें तो विज्ञान शिक्षा में–प्रक्रिया और विषयवस्तु–दोनों महत्वपूर्ण हैं। अतः विज्ञान के मूल्यांकन को भी इन दो पहलुओं पर केन्द्रित करना होगा। चाहे मूल्यांकन का आधार बड़े पैमाने पर प्रचलित ढंग की परीक्षा हो, स्कूल का क्विज़ हो, या फिर किसी विज्ञान शिक्षिका के द्वारा कक्षा में इधर–उधर घूमते हुए बच्चों की बातों को सुनकर किया जाने वाला अनौपचारिक मूल्यांकन। शिक्षण और मूल्यांकन, दोनों के केन्द्रीय तत्व होना चाहिए: महत्वपूर्ण विचार, अवधारणाएँ और कौशल। पाठ्यक्रम, जैसा कि किसी ने कहा है, 'मील भर चौड़ा पर सिर्फ एक इंच गहरा नहीं' होना चाहिए।

यहाँ हम उदाहरण सहित कुछ ऐसे गहरे सत्य सामने रख रहे हैं जिनका अनुभव हमें बड़े पैमाने पर किए गए मूल्यांकनों में हुआ है।

आम विचार वैज्ञानिक विचारों पर भारी पड़ते हैं

नीचे बॉक्स में दिए गए प्रश्न के उत्तरों से निकले परिणाम से पता चलता है कि

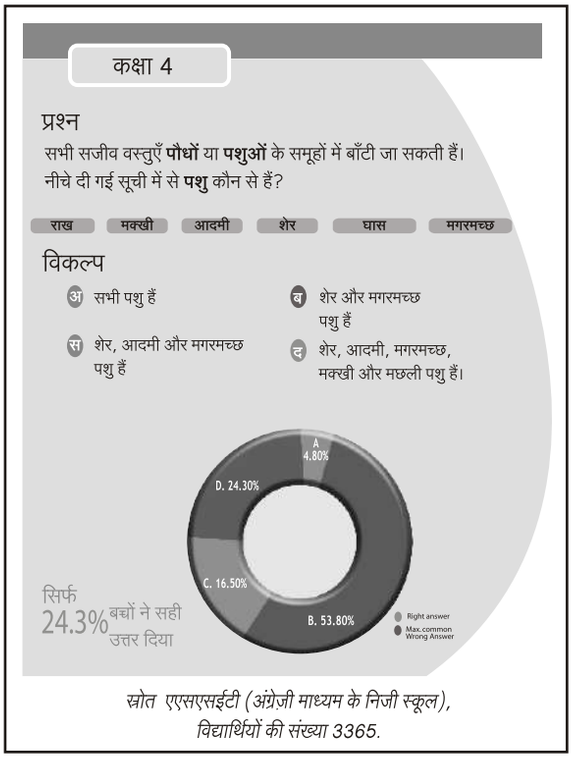

स्रोत एएसएसईटी (अंग्रेज़ी माध्यम के निजी स्कूल), विद्यार्थियों की संख्या 3365.

50% से ज़्यादा बच्चे मानते हैं कि दिए गए प्राणियों में सिर्फ शेर और मगरमच्छ ही पशु हैं, तथा मनुष्य, मक्खी और मछली पशु नहीं हैं। विद्यार्थियों की आम टिप्पणियाँ थीं कि, 'मनुष्य पहले पशु हुआ करता था, लेकिन अब नहीं है', 'मछली तो जलचर है'। इससे पता चलता है कि 'पशु' शब्द का आम अर्थ ही विद्यार्थियों की सोच पर हावी है। यद्यपि हो सकता है कि उन्हें विज्ञान की किसी कक्षा में पढ़ाया गया हो कि सभी सजीव वस्तुओं को पौधों और पशुओं के समूहों में बाँटा जाता है (जो दरअसल इस प्रश्न में भी बताया गया है); दोनों में भेद करने वाली विशेषता यह है कि पौधे सूर्य की रोशनी से अपना भोजन खुद बनाते हैं, जबकि पशुओं को अपने भोजन के लिए पौधों या दूसरे पशुओं पर निर्भर रहना पड़ता है।

ये परिणाम विद्यार्थियों की योग्यता पर टिप्पणी नहीं करते, बल्कि इस आवश्यकता को रेखांकित करते हैं कि शिक्षा प्रदान करने वालों को बच्चों के मन पर आम बोलचाल के शब्दों और विचारों के गहरे प्रभाव के प्रति जागरुक होना

चाहिए। उन्हें ऐसे शिक्षण के बारे में सोचना चाहिए जो भ्रांतियों का समाधान करने में सक्षम हो। उदाहरण के लिए, परिणाम पाकर हो सकता है कि कोई शिक्षक, 'पशु' क्या होता है, इस बारे में विद्यार्थियों के विचार जानने को प्रेरित हो। वह इस बात पर समय लगाकर किसी शब्द के सामान्य तथा वैज्ञानिक अर्थ का अन्तर स्पष्ट करे। वह मनुष्य, मक्खी और शेर की उन समानताओं पर जोर दे जिनके कारण वे सभी 'पशु' की श्रेणी में आते हैं।

पहले से बनी मानसिक तस्वीरें हावी रहती हैं

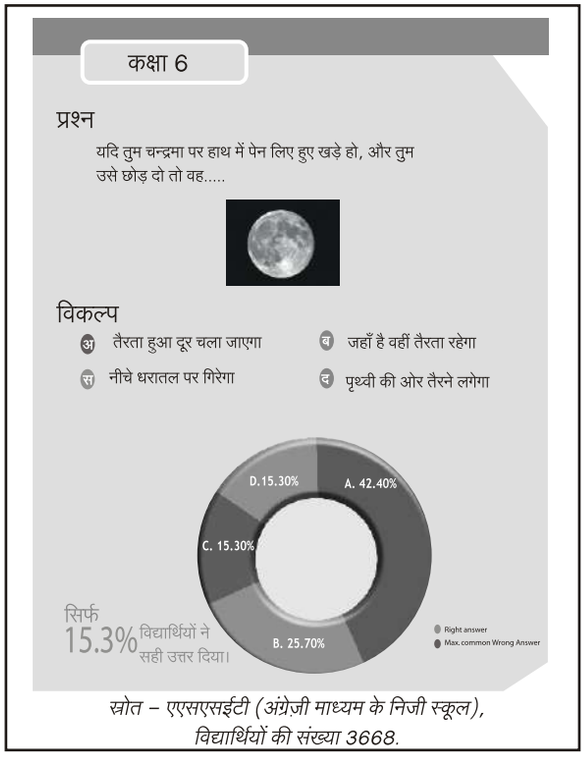

स्रोत – एएसएसईटी (अंग्रेज़ी माध्यम के निजी स्कूल), विद्यार्थियों की संख्या 3668.

ये परिणाम और विद्यार्थियों से बाद में हुई बातचीत बताती है कि अन्तरिक्ष और अन्तरिक्ष यानों में तैरते हुए अन्तरिक्ष यात्रियों के चित्रों ने बच्चों की (और अनेक वयस्कों की) मानसिक छवियों को बहुत प्रभावित किया है। गुरुत्वाकर्षण और भार के बारे में भी अनेक भ्रांतियाँ हैं; भार को गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव की तरह देखने के बजाय, ज़्यादातर उसे वस्तु का एक गुण माना जाता है जिसके कारण वह गिरती है। इस प्रश्न का गलत उत्तर देने वाले विद्यार्थियों में से ही, अनेक आराम से आप को बता सकते हैं कि चन्द्रमा पर गुरुत्वाकर्षण, पृथ्वी पर गुरुत्वाकर्षण का 1/6वां भाग है। यदि शिक्षक यह समझ सकें कि बच्चे अपनी निजी धारणाएँ लेकर स्कूल आते हैं, तो वे यह भी देख सकेंगे कि उनका काम विद्यार्थियों की इस तरह से मदद करना है कि वे अपनी धारणाओं या मानसिक तस्वीरों की सत्यता की जाँच कर सकें, और उन्हें अधिक वैज्ञानिक मॉडलों से बदल सकें। हार्वड स्मिथसोनियन सेन्टर द्वारा निर्मित एक वीडियो शृंखला इस प्रक्रिया को बहुत प्रभावशाली ढंग से दर्शाती है। इसकी जानकारी इस लिंक पर उपलब्ध है: (http://www.learner.org/resources/series26.html)। हमने भी विद्यार्थियों के साक्षात्कारों पर आधारित फिल्मों की एक शृंखला का निर्माण किया है जिनकी प्रतियाँ हमसे ली जा सकती हैं।

भ्रांतियों के अन्य उदाहरण और उनके स्रोत

अंग्रेज़ी माध्यम के निजी स्कूल और सरकारी स्कूल, दोनों के साथ काम करते हुए हमने ऐसे कई उदाहरण देखे हैं। यहाँ कुछ अन्य प्रकार के उदाहरणों की एक झलक प्रस्तुत है –

- *विचारों पर पाठ्यपुस्तक का सन्दर्भ हावी रहता है :* प्रायमरी स्तर की अधिकांश पाठ्यपुस्तकें 'वाष्पीकरण' का जिक्र हमेशा जल–चक्र के सन्दर्भ में करती हैं। इससे बच्चों की यह धारणा बन जाती है कि 'वाष्पीकरण' और 'जल–चक्र' समानार्थी हैं। परिणामस्वरूप, उन्हें यह विश्वास नहीं होता कि गिलास में भरे पानी, या किसी सड़क के गड्ढे में भरे पानी से वाष्पीकरण हो सकता है।

- *वास्तविक जीवन का कमज़ोर निरीक्षण :* विद्यार्थियों से मिले उत्तरों के आँकड़े बार–बार यह दर्शाते हैं कि उन्हें रोज़मर्रा के क्रियाकलापों का सावधानी से निरीक्षण करके विज्ञान सीखने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जाता। जैसे उदाहरण के लिए, यह देखना कि छायाएँ कैसे बनती हैं।

देश के पाँच राज्यों के म्युनिसिपल स्कूलों में किए गए अध्ययन से प्राप्त एक रोचक उदाहरण देखें। कक्षा 6 के विद्यार्थियों से (उनकी स्थानीय भाषा में) यह पूछा गया कि

इनमें से कौन–सा हमसे सबसे ज़्यादा दूर है?

अ) बादल

ब) एक उड़ता हुआ कौआ

स) सूर्य

द) चन्द्रमा

30–50% विद्यार्थियों ने उत्तर दिया कि बादल हमसे सबसे ज़्यादा दूर हैं! इस प्रश्न के उत्तर में मिले आँकड़ों ने हमें यह सोचने पर मजबूर किया कि स्कूल वास्तव में बच्चों को सिखाने में जरा भी मदद कर रहे हैं या नहीं!

मूल्यांकन के आँकड़े – अन्तर्दृष्टियों का खजाना

हम मानते हैं कि जैसे–जैसे शिक्षा में अधिक से अधिक भागीदार बड़े पैमाने पर

होने वाले मूल्यांकन की ताकत पहचानेंगे, वैसे–वैसे मूल्यांकन के आँकड़ों से अन्य अनेक प्रकार की अन्तर्दृष्टियाँ प्राप्त करने का प्रयास किया जाएगा। आँकड़ों से और क्या निकालना सम्भव है इसका एक उदाहरण नीचे पेश है। यह विश्लेषण दर्शाता है कि पाँच साल की स्कूली शिक्षा भी श्वसन क्रिया की अवधारणा से सम्बन्धित एक भ्रांति को दूर करने में बिलकुल कारगर नहीं होती।

कक्षा 4 से कक्षा 10 तक के विद्यार्थियों से पूछा गया प्रश्न था –

इनमें से कौन–से श्वसन क्रिया के उदाहरण हैं?

1. मनुष्य ऑक्सीजन का उपयोग करते हैं और कार्बन डाई–ऑक्साइड छोड़ते हैं।
2. पौधे कार्बन डाई–ऑक्साइड का उपयोग करते हैं और ऑक्सीजन छोड़ते हैं।
3. सूखी पत्तियों को जलाने में ऑक्सीजन का उपयोग होता है और कार्बन डाई–ऑक्साइड मुक्त होती है।

विकल्प–

अ) सिर्फ 1

ब) सिर्फ 2

स) सिर्फ 1 और 2

द) 1, 2 और 3

सही उत्तर है, अ) सिर्फ 1; प्रक्रिया 2 प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया है। बहुत से वयस्क लोग भी यह नहीं जानते कि पौधे साँस लेने के लिए लगातार ऑक्सीजन ले रहे हैं, और साथ ही साथ कार्बन डाई–ऑक्साइड छोड़ रहे हैं, इसी से उनकी जीवन प्रक्रियाओं के लिए ऊर्जा प्राप्त होती है। प्रक्रिया 3 दहन की प्रक्रिया है।

इन सभी कक्षाओं के विद्यार्थियों से मिले उत्तरों के आँकड़े नीचे दिए गए ग्राफ में दर्शाये गए हैं। विद्यार्थियों की उम्र 9.5 वर्ष से 14.8 वर्ष तक थी।

आँकड़े स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि बच्चे उत्तर स) देना जारी रखते हैं (यह सोचकर कि प्रकाश संश्लेषण पौधों के 'साँस लेने का तरीका है')। उनकी इस समझ में पाँच वर्षों की स्कूली शिक्षा से भी लगभग कोई अन्तर नहीं पड़ा। यह उम्र का वह दौर है जिसमें वे पूरे मानव शरीर तथा श्वसन तंत्र सहित उसकी सभी व्यवस्थाओं के बारे में सीखते हैं। साथ ही वे पौधों, प्रकाश संश्लेषण तथा उसमें होने वाली रासायनिक क्रियाओं के बारे में भी सीखते हैं। वे कार्बन चक्र, रसायन शास्त्र तथा रासायनिक क्रियाओं के बुनियादी सिद्धान्त भी सीखते हैं। लेकिन जाहिर है, कि यह सब सचमुच में 'सीखा' जा रहा है इसका जरा भी प्रमाण नहीं मिलता।

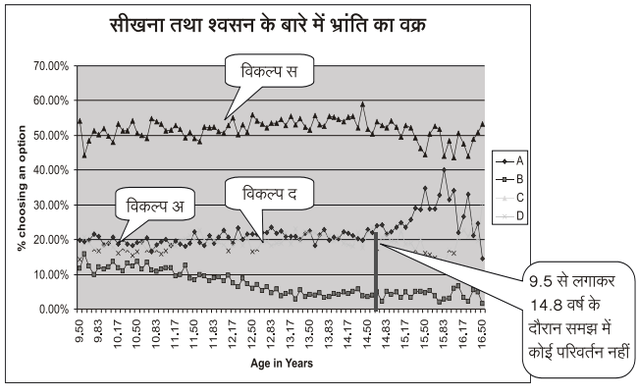

मूल्यांकन के आँकड़ों का अर्थ निकालना और उस पर कार्यवाही करना

जैसा हमने ऊपर देखा है, मूल्यांकन से निश्चित ही इसके बारे में मूल्यवान आँकड़े और अन्तर्दृष्टियाँ प्राप्त होती हैं। पता चलता है कि हम व्यक्ति, कक्षा, स्कूल या राष्ट्र के रूप में अपने लक्ष्यों की ओर कैसे बढ़ रहे हैं। आँकड़ों के आधार पर विश्लेषण करने और निर्णय लेने की संस्कृति का विकास करने से प्रयासों में सघनता आएगी और शिक्षा में सभी भागीदारों के बीच मुद्दों पर आधारित सार्थक संवाद होगा।

फिर भी हमें मूल्यांकन के आँकड़ों को आँखें बन्द करके उनके सन्दर्भ को समझे बिना स्वीकार कर लेने, और उन आँकड़ों पर बिना सोचे–समझे एकदम प्रतिक्रिया देने के जोखिम के प्रति सचेत रहने की आवश्यकता है। जब वैज्ञानिक पद्धति से प्राप्त मूल्यांकन के आँकड़े, सीखने की प्रक्रिया में बड़ी खामियों की ओर इशारा करते हैं, तो व्यवस्था की स्वाभाविक प्रतिक्रिया एक तरह का 'रक्षात्मक रवैया' हो सकती है। खासतौर पर जब 'आधिकारिक' आँकड़े सुखद तस्वीर दिखा रहे हों। किसी व्यवस्था के लिए सच्चे तथ्यों को स्वीकार करना और वर्तमान परिस्थिति के यथार्थ का सामना करना भयावह हो सकता है। परन्तु हम सचमुच सीखने की प्रक्रिया को बेहतर बनाना चाहते हैं तो इसके अलावा कोई विकल्प नहीं है। 'गुड इज़ ग्रेट' के लेखक जिम कॉलिन्स का कथन है, 'महान संगठन क्रूर तथ्यों का सामना करते हैं पर अपनी आस्था कभी नहीं खोते'। हम यही व्यवस्थाओं के बारे में भी कह सकते हैं।

जब आप मूल्यांकन के आँकड़ों का अर्थ निकालें, तो सन्दर्भ से जुड़े प्रश्न पूछने का ध्यान अवश्य रखें, जैसे कि – दिया गया प्रश्न क्या था? उसे हल करने के लिए देने का तरीका क्या था? विद्यार्थियों ने किन परिस्थितियों में परीक्षा दी? नमूनाकरण कैसे किया गया? सांख्यिकीय वैधता कैसे निर्धारित की गई है? विद्यार्थियों से सहज परिवेश में लिए गए साक्षात्कारों से क्या पता चलता है? आँकड़े हमें क्या बता रहे हैं, इसकी सही और समग्र तस्वीर हमें तभी मिलती है, जब हम ऐसी बारीकियों के विस्तार में जाते हैं।

सीखने के अटूट अंग के रूप में मूल्यांकन

क्या मूल्यांकन की बात केवल बड़े पैमाने पर होने वाली परीक्षाओं के बारे में है? बिलकुल नहीं! मूल्यांकन तो सीखने की प्रक्रिया का अटूट अंग है। यह शिक्षक और विद्यार्थियों को अपने प्रयासों का परिणाम (फीडबैक) देखने के बारे में है। यह लक्ष्यों को पहचानने और स्पष्ट करने के बारे में है और हमेशा साध्य पर ध्यान रखने के बारे में है। वास्तव में, सीखने की प्रक्रिया से मूल्यांकन को अलग करना असम्भव है।

हमारे अनुभव से साफतौर पर यह दिखाई देने लगा है कि मूल्यांकन का उपयोग नए और भिन्न तरीकों से सीखने के लिए हो सकता है। आजकल हम, निजी और सरकारी, दोनों प्रकार के स्कूलों में गणित के लिए विकसित, माइंडस्पार्क नामक प्रश्नों पर आधारित, सीखने की एक लचीली पद्धति के साथ काम कर रहे हैं। यह पद्धति 'बारीक भेदों वाले प्रश्नों' का प्रयोग करती है। ऐसे प्रश्न जो क्रमशः ऊँची होती हुई अवधारणाओं से सम्बन्धित होते हैं, लेकिन इस तरह से कि एक प्रश्न में परीक्षित अवधारणा से अगले प्रश्न में जाँची जा रही अवधारणा बहुत ज़्यादा जटिल नहीं होती, उनके स्तर में थोड़ी–सी ही वृद्धि होती है। ऐसी प्रश्नाधारित मूल्यांकन व्यवस्थाएँ कक्षा में होने वाले सामूहिक शिक्षण में सिखाने की प्रक्रिया में पूरक बनकर व्यक्तिगत रूप से सहारा देने के महत्वपूर्ण औजारों का काम कर सकती हैं। प्रारम्भिक सघन जाँच परीक्षाओं से उत्साहवर्धक परिणाम मिल रहे हैं। बच्चों को प्रश्नों का उत्तर देना अच्छा लगता है और उनके सीखने के स्तरों में सांख्यकीय दृष्टि से महत्वपूर्ण सुधार हुआ है। माइंडस्पार्क साइन्स मॉड्यूल्स के विकास का काम अभी चल रहा है।

हम आशा करते हैं कि इस लेख ने विज्ञान में, तथा व्यापक रूप से, मूल्यांकन की सामर्थ्य पर कुछ प्रकाश डाला होगा। यह मूल्यांकन के तरीकों की गहरी जाँच–पड़ताल को बढ़ावा देगा तथा शिक्षा से सरोकार रखने सभी लोगों को मूल्यांकन के आँकड़ों का प्रयोग करने को प्रोत्साहित करेगा।

विष्णु अग्निहोत्री, ऐजुकेशनल इनीशियेटिव्ज़। ऐसेट (एएसएसईटी) टीम के प्रमुख । ऐसेट निदानात्मक परीक्षण का विकास कर रही है । इसका उपयोग देश भर के अँग्रेज़ी माध्यम के स्कूलों में हो रहा है। उनसे इस पते पर सम्पर्क किया जा सकता है : vishnu@ei-india.com

निश्चल शुक्ला, ऐजुकेशनल इनीशियेटिव्ज़। ऐसेट टीम के वरिष्ठ सदस्य। विज्ञान तथा गणित के मूल्यांकन में काम करते हैं। उनकी विशेष रुचि विद्यार्थियों के साक्षात्कार से यह जानने में है कि बच्चे कैसे सीखते हैं। उनसे सम्पर्क का पता है : nishchal@ei-india.com

अपूर्व भण्डारी, कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय, यूके, में स्नातकोत्तर विद्यार्थी हैं। वे ऐजुकेशनल इनीशियेटिव्ज़ के साथ विभिन्न शोध परियोजनाओं में जुड़े हैं। उनकी विशेष रुचि तंत्रिका विज्ञान, पहचानने और सीखने के मॉडलों में है। उनसे सम्पर्क का पता है : apoorva@ei-india.com

शिक्षक की अहम भूमिका

विकासशील शिक्षक

कमल महेन्द्रू

1929 में लिखे गए एक लेख में विज्ञान का सफल शिक्षक उसे माना गया है जो:

''...अपने खुद के विषय को भलीभाँति जानता हो... विज्ञान की दूसरी शाखाओं का भी अच्छा खासा ज्ञान रखता हो... पढ़ाना जानता हो... खुद को स्पष्टता के साथ व्यक्त कर पाता हो... कार्य संचालन में कुशल हो.. मेज़ पर और प्रयोगशाला में, दोनों ही जगह अपना काम चतुराई से करता हो... पूरी तरह से तर्क में निष्णात हो... दार्शनिक किस्म का हो... इस सीमा तक इतिहास का ज्ञाता हो कि वह विद्यार्थियों की भीड़ के बीच बैठकर उनके साथ गैलिलियो, न्यूटन, फैराडे और डार्विन जैसी प्रतिभाओं के व्यक्तिगत समीकरणों, उनके जीवन व कार्यों की चर्चा कर सके। इससे भी ज़्यादा ज़रूरी यह है कि उसे उत्साही होना चाहिए एवं अपने कार्य में उसकी पूरी आस्था होना चाहिए।''[1]

अस्सी साल बाद भी यह बात सही लगती है। पर विज्ञान के आदर्श शिक्षक की इस व्याख्या में कुछ और बातें भी जोड़ी जा सकती हैं। इस वर्णन की एक कमी इसका पुरुष-प्रधान होना है जो ज़ाहिर सी बात है आज के समय के माफिक नहीं है। हो सकता है ये सारी क्षमताएँ यथार्थ में हासिल करना कुछ ज़्यादा ही आदर्शवादी लगे, पर इससे शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिए सही दृष्टिकोण देने में मदद मिलती है। ऐसा शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम कैसे तैयार किया जाए जिसमें इस लक्ष्य को पा सकने की सम्भावना हो? इसे और स्पष्ट करें तो, एक अच्छे शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में क्या होना चाहिए?

मैं शिक्षकों के साथ चर्चाओं में उनके सामने अच्छे विज्ञान शिक्षण के सिद्धान्तों पर भाषण (अथवा पावरपॉइंट प्रस्तुति) देने के बजाय यह कोशिश करता हूँ कि वे किसी विशेष प्रश्न या अवधारणा की पड़ताल करें। ऐसा ही एक प्रश्न है गिरती हुई वस्तुओं के बारे में। यदि हम किसी निश्चित ऊँचाई से एक भारी वस्तु और एक हल्की वस्तु को एक साथ एक ही समय पर गिराएँ तो इसमें से क्या होने की सम्भावना है:

अ) हल्की वस्तु, भारी वस्तु से पहले ज़मीन पर पहुँचेगी।

ब) भारी वस्तु, हल्की वस्तु से पहले ज़मीन पर पहुँचेगी।

स) दोनों वस्तुएँ एक ही समय पर ज़मीन पर पहुँचेंगी।

रोचक बात है कि लगभग हमेशा ही अधिकांश लोग विकल्प (ब) को चुनते हैं। शुरू-शुरू में मुझे उनके उत्तर से उनके ज्ञान के स्तर को लेकर काफी निराशा-सी हुई। क्योंकि यह सवाल हाईस्कूल स्तर के विज्ञान का है। पर उनके इस भ्रम के पीछे छिपे कारण को समझा जा सकता है। हमारे रोज़मर्रा का अनुभव हमें किसी पत्थर के गिरने के बजाय सूखी पत्तियों, कागज़ के टुकड़ों या पंखों के हवा में बहते हुए धीरे-धीरे ज़मीन तक पहुँचने की याद दिलाता है। यहाँ तक कि महान यूनानी दार्शनिक अरस्तु ने भी अनुमान लगाया था कि किसी गिरती हुई वस्तु की रफ्तार उसके वज़न के समानुपातिक होगी।[2] लगभग दो हज़ार साल बाद गैलिलियो ने उसके इस मत को चुनौती दी और पीसा की मीनार से तोप के गोले और बन्दूक की गोली को एक साथ गिराया। शैक्षिक शोधकर्ताओं ने इस समस्या को भोली धारणाओं या सामान्य अन्तर्बोध से उनके विपरीत बोध वाली अवधारणाओं पर पहुँचने की यात्रा कहा है।

'कठिन विषय-बिन्दुओं' की एक सूची बनाकर उसमें इस तरह की अवधारणाओं को शामिल कर लेने, और उन्हें समझाने के निरन्तर प्रयासों से यह समस्या नहीं सुलझती। ऐसी अवधारणाओं को विद्यार्थियों/शिक्षकों के साथ तार्किक ढंग से पुनः परखने के लिए किसी प्रक्रिया को शुरू करने की ज़रूरत है। यह प्रयास अक्सर ऐसे किसी प्रयोग के साथ प्रारम्भ किया जा सकता है जो चिन्तन प्रक्रिया की शुरुआत के लिए उत्प्रेरक का काम करे।

एक नोटपैड तथा उसमें से निकाले गए एक पेज के साथ सरल प्रयोग करके अच्छी शुरुआत की जा सकती है। उस पेज तथा नोटपैड को एक निश्चित ऊँचाई (कुर्सी या मेज़ पर खड़े होना पर्याप्त होगा) से एक साथ छोड़ने पर अरस्तु का अन्दाज़ा सही साबित होता है।

तब क्या होगा अगर हम उस कागज़ को नोटपैड के ठीक नीचे रखें और उन्हें एक साथ छोड़ें? सब सहमत होते हैं कि भारी पैड हल्के कागज़ को अपने साथ ले जाएगा और दोनों एक ही समय पर ज़मीन पर गिरेंगे। यह प्रयोग, सिद्धान्त को प्रयोग द्वारा सिद्ध करने के तरीके की छोटी-सी सफलता का प्रदर्शन मात्र है!

अगले प्रयोग में कागज़ को पैड के ऊपर, उससे पूरी तरह मिलाकर रखना है। ज़मीन पर पहले कौन पहुँचेगा - कागज़ या पैड? मैंने कभी-कभार ही इस बात पर सन्देह करने वाले लोग पाए हैं कि भारी पैड हल्के कागज़ को बहुत पीछे छोड़ देगा। पर प्रयोग का नतीजा अक्सर ही एक आश्चर्यचकित मौन छोड़ जाता है। इस प्रयोग को खुद करें और देखें कि कागज़ पैड के साथ गिरता है! कुछ लोग, यह सन्देह करते हुए कि कहीं इसके पीछे कोई चालाकी

1. वेस्टवे, 1929 पेज 3 एज कोटेट इन मैथ्यूज 1994 पेज 201

2. कैजोरी 1920

तो नहीं, इसे खुद करके देखना चाहेंगे उनका स्वागत करते हुए सच्ची वैज्ञानिक भावना के साथ उन्हें प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

इसके बाद एक जोशीली चर्चा शुरू होती है। क्या हमारा यह मानना सही है कि अपने भारों के अनुपात में भारी वस्तु हल्की वस्तु से जल्दी नीचे गिरेगी? यह आम सहमति उभरती है कि इस मामले में जो अन्तर था वह सम्भवतः इन दोनों वस्तुओं के नीचे जाने की यात्रा के दौरान हवा द्वारा पैदा किए गए प्रतिरोध में अन्तर के कारण है। फिर भी ऐसे पर्याप्त संशयवादी लोग हैं जो इस विचार को स्वीकार नहीं कर सकते कि सम्भवतः इसमें भार कोई कारक ही नहीं है। यह स्थिति अगला प्रयोग करने के लिए एकदम सही है। उसी कागज़ को मुट्ठी में दबाकर एक कसी हुई गेंद की शक्ल दी जाती है, तथा फिर से नोटपैड और कागज़ की गेंद को नीचे गिराया जाता है। वे लगभग एक साथ ही गिरते प्रतीत होते हैं। लेकिन सन्देह प्रकट किए जाते हैं कि उन दोनों को ठीक एक ही क्षण पर गिराया गया था कि नहीं। कुछ समूह जोश में उठ कर ऐसे तरीके ईज़ाद करने लगते हैं जिनसे यह सुनिश्चित हो सके कि कागज़ की गेंद और नोटपैड को एक ही ऊँचाई से व एक ही समय पर छोड़ा जाए। वे यह भी सुनिश्चित करना चाहते हैं कि जहाँ तक सम्भव हो सके दोनों वस्तुओं के ज़मीन पर गिरने के समय का सही–सही अवलोकन किया जाए। सैकेण्ड के सौंवे हिस्से तक समय मापने वाली स्टापवाच के साथ आने वाले मोबाइल फोन अक्सर शिक्षकों की जेबों में मौजूद रहते हैं। जितना सम्भव हो उतना सही–सही प्रयोग करने के लिए तरीका ईजाद करने में कुछ समय 'गंवाना', तथा तीनों कथनों के बारे में अनुभव और प्रयोग के आधार पर सिद्ध किए जा सकने वाले निष्कर्ष निकालने की कोशिश करना, बिलकुल जायज़ और सराहनीय है।

अब गैलिलियो और उसके 100 पौंड के तोप के गोले तथा आधे पौण्ड की बन्दूक की गोली के साथ किए गए प्रयोगों की बात करते हैं। हमारा कागज़ की गेंद व नोटपैड वाला प्रयोग उन प्रयोगों की पुनरावृत्ति है जो सुनते हैं गैलिलियो ने पीसा की मीनार से किए थे। अपने प्रयोग से पूर्णतया आश्वस्त होकर गैलिलियो ने दावा किया कि अरस्तु ने अपने अनुमान को पुष्ट करने के लिए कभी कोई प्रयोग नहीं किया और इसलिए वे गलत थे। पर गैलिलियो ने अपने तर्क को रोचक ढंग से विकसित किया। यह तर्क उनकी किताब 'डायलॉग्ज़ ऑन टू न्यू साइन्सेज़' में वर्णित है। ये संवाद तीन व्यक्तियों के बीच होते हैं सलवियाटो, जो गैलिलियो के तर्कों को सामने रखता है; सिम्प्लीसियो, जो अरस्तु की दृष्टि को प्रस्तुत करता है; तथा सैग्रेडो, जो तार्किक ढंग से सोचने वाला निष्पक्ष व्यक्ति है और वह पहले दो के बीच हो रहे संवादों पर अपनी राय देता है। गैलिलियो के जीवन व कार्यों के विभिन्न पक्षों को नाटकीय ढंग से बताया जा सकता है, पर यहाँ हमारी विषयवस्तु के लिए प्रासंगिक तर्क का सार प्रस्तुत है।

अरस्तु के अनुमान को स्वीकार करते हुए, यदि हम दोनों गेंदों को इकट्ठी बाँधकर गिराते हैं, तो सैद्धान्तिक तर्क हमें दो निष्कर्षों की तरफ ले जा सकता है। चूँकि हल्की गेंद गिरने में ज़्यादा समय लेती है, वह भारी गेंद की गति को भी धीमा कर देगी, और अकेली भारी गेंद की तुलना में, इन दोनों को मिलकर ज़मीन तक पहुँचने में ज़्यादा समय लगेगा। जबकि यदि हम उन दोनों के संयुक्त भार को लें तो वह अकेले तोप के गोले की तुलना में ज़्यादा होगा और इस तरह दोनों को मिलकर ज़मीन पर पहुँचने में तोप के गोले की तुलना में कम समय लगना चाहिए। ये दो तर्क एकसाथ तर्कसंगत किन्तु विरोधाभासी दोनों हैं। गैलिलियो का मानना है कि इसका अर्थ यह हुआ कि प्रारम्भिक अनुमान वैध नहीं है, तथा किसी वस्तु का भार सीधे तौर पर, गिरने में लगने वाले समय अथवा गिरने की रफ्तार को प्रभावित नहीं करता। जो अन्तर हमें नज़र आता है वह उस माध्यम द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले प्रतिरोध के कारण होता है जिसमें वस्तु गिर रही होती है। यह प्रतिरोध कई इकट्ठे कारकों पर निर्भर करता है, जैसे वस्तु का आकार, उसके पदार्थ का घनत्व, माध्यम का घनत्व, माध्यम की गति आदि।

फिर गैलिलियो ने कल्पना की तार्किक छलांग लगाते हुए कहा कि माध्यम–मुक्त स्थिति – निर्वात – में एक हल्की और एक भारी वस्तु ठीक एक ही समय पर गिरेंगी। समूह के प्रत्येक व्यक्ति द्वारा इस सैद्धान्तिक दलील को आत्मसात करने के लिए धैर्य और दोहराव की ज़रूरत होती है। इस तरह की तार्किक बहस में प्रशिक्षित होना विज्ञान सीखने का उतना ही ज़रूरी अंग है जितना कि प्रायोगिक कौशल विकसित करना।

सन 1971 में, चाँद पर भेजे गए अपोलो 15 मिशन के अन्तरिक्ष यात्री डेविड स्कॉट ने एक हथौड़ा और पंख चाँद पर गिराए। उसका वीडियो हमें दर्शाता है कि उस वायुरहित सतह पर वे दोनों एक ही रफ्तार से एक साथ तल पर पहुँचते हैं, जिससे कि प्रायोगिक रूप से गैलिलियो का तर्क सही साबित हो जाता है।

आगे की चर्चा में, इस अवधारणात्मक विकास के एक बहुत महत्वपूर्ण पक्ष को उभारा जा सकता है। गैलिलियो के प्रयोगों ने यह तो ज़रूर दिखाया कि अरस्तु का अनुमान सही नहीं था, पर वायु के प्रभाव के चलते गैलिलियो खुद पूरी ईमानदारी और आश्चर्यजनक बारीकी के साथ दर्ज किए गए अपने दावे को भी पूर्ण विशुद्धता के साथ प्रमाणित नहीं कर सके। दो दशकों के अत्यधिक परिश्रमपूर्ण प्रयोगों और सिद्धान्त निर्माण के बाद वह दावा किया जा सका

जिसने विज्ञान की क्रियाएँ करने के दो नए तरीके ईजाद किए – आदर्शीकरण और वैचारिक प्रयोग। कक्षा को उत्साहित करने तथा उन्हें और गहरी जाँच-पड़ताल में ले जाने के लिए उनके सामने अनेक रोचक प्रश्न रखे जा सकते हैं। अरस्तु जैसा बुद्धिमान व्यक्ति ऐसा दावा कैसे कर सकता था? ऐसे कौन-से सैद्धान्तिक आधार थे जिनकी वजह से उसने ऐसा दावा किया? क्या हम अब भी यह कह सकते हैं कि किसी अन्य ग्रह पर पूर्ण निर्वात में हथौड़ा और पंख दोनों गिरने में बिलकुल एक ही समय लेंगे? इनमें से कुछ सवाल अभी भी विज्ञान के खुले सवाल हैं, तथा बहुत कुछ और भी सोचा जा सकता है।

एक महत्वपूर्ण प्रश्न जो उठाया गया, यह है – क्या अब शिक्षकों ने ऐसे प्रश्नों से जूझने के लिए पर्याप्त गहरी समझ हासिल कर ली होगी, जैसे प्रश्न से हमने शुरुआत की थी? इसका उत्तर हाँ भी हो सकता है और ना भी। पर यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि वे लोग एक विचारात्मक यात्रा पर निकल पड़े होंगे। जो अब उन्हें झुके हुए समतलों और पेण्डुलमों के साथ की गई गैलिलियो की जाँच-पड़तालों से लेकर न्यूटन के गति व गुरुत्वाकर्षण के नियमों तक ले जा सकती है। इससे गति की उनकी समझ गहराएगी; जैसा कि न्यूटन ने कहा था, ...'(उनको तैयार करो) ताकि वे विराट व्यक्तित्वों के कन्धों पर चढ़कर दूर तक देख सकें'। ऐसे सत्रों के बाद शिक्षकों की उत्साहित और गम्भीर प्रतिक्रियाओं तथा प्रश्नों से बड़ा संतोष और प्रोत्साहन मिलता है।

अब इस तरह के मार्ग को चुनने के पीछे की मान्यताओं को सामने रखना बाकी रह जाता है। विज्ञान पढ़ाने और उसकी गतिविधियाँ करने का हमारा तरीका, विज्ञान की पद्धति तथा उसके वैचारिक ढाँचों की हमारी दोहरी समझ पर ही निर्णायक रूप से निर्भर करता है। यह दोहरी समझ विज्ञान का प्रयोग करने की हमारी क्षमता व आत्मविश्वास के साथ चलती है। जैसा कि आइन्सटाइन ने बड़ी स्पष्टता के साथ कहा था:

'अनुमानित अवधारणाओं और व्यवस्थाओं के बगैर कोई प्रायोगिक पद्धति नहीं होती; और अनुमानों पर आधारित ऐसा कोई चिन्तन नहीं होता जिसकी अवधारणाएँ, नज़दीकी पड़ताल करने पर, उनको पैदा करने वाली प्रायोगिक सामग्री को उजागर नहीं करतीं।'

> प्राकृतिक ज्ञान में होने वाली प्रत्येक बड़ी प्रगति में अधिकार को पूरी तरह से ठुकराया गया है।
>
> – थॉमस एच. हक्सले

विज्ञान के इतिहास और दर्शन का उपयोग शिक्षकों और विद्यार्थियों को यह बताता है कि यह पद्धति और यह वैचारिक ढाँचा कैसे विकसित हुआ। उनके साथ फिर से पीछे जाकर विज्ञान की यात्रा के कुछ महत्वपूर्ण चरणों का पुनरावलोकन करने से उनकी समझ, और उस समझ को उपयोग कर सकने वाला कौशल दोनों विकसित होंगे। इससे वैज्ञानिक कार्यपद्धति के साथ जुड़े महत्वपूर्ण मूल्य उभरकर सामने आते हैं – जैसे संशय करना, (तथाकथित पांडित्य की) सत्ता पर आधारित किसी रूढ़िवादी सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करना तथा निष्कर्ष निकालने में, या उनका बचाव करने में, साक्ष्य और विवेकपूर्ण तार्किक प्रक्रिया की निर्णायक भूमिका।

विषय के बारे में उनके ज्ञान और उसके साथ जुड़े हुनर को पक्का करने के अलावा, यह तरीका शिक्षकों, और उनके ज़रिये छात्रों, को इस केन्द्रीय प्रश्न से रूबरू होने का अवसर देता है कि – ज्ञान, ज्ञान मीमांसा तथा सारी शिक्षा का लक्ष्य क्या है? यह उन्हें विज्ञान के समाजशास्त्र, उसके नीतिशास्त्र एवं मूल्यों के बारे में एक और दृष्टि देता है। इन सबसे मिलकर बनती है एक बहुत बदनाम अवधारणा–'वैज्ञानिक सोच'– जो भारतीय संविधान में वर्णित एक प्रतिबद्धता है।

हम शिक्षकों को उपदेश दिए जाने के ज़्यादा आदी हैं, कि उन्हें कैसे पढ़ाना चाहिए या क्या पढ़ाना चाहिए। अब समय है शिक्षक–प्रशिक्षकों, पाठ्यक्रम निर्माताओं, प्रशासकों और नीति निर्माताओं को स्वयं के आचरण में वह करके दिखाने का जिसकी सीख वे शिक्षकों को देते हैं। यह करने में, वे ऐसे तरीकों को अपनाने पर आमतौर पर होने वाली उन आलोचनाओं का जवाब भी दे सकेंगे जिनमें ऐसे तरीकों को अत्यधिक समय लेने वाला बताया जाता है, और यह शंका जताई जाती है कि इस तरीके से पूरा पाठ्यक्रम नहीं पढ़ाया जा सकेगा। केन्द्रीय मुद्दा पाठ्यक्रम नहीं बल्कि हमारी शिक्षा के लक्ष्य हैं।

सन्दर्भ

कैजोरी,एफ.: 1920, ऐरिस्टॉटल एण्ड गैलिलियो ऑन फॉलिंग बॉडीज़, साइन्स, न्यू सीरीज़, 51 (1329), 615–616.

फ़ॉलोइंग द पाथ ऑफ डिस्कवरी: फेमस ऐक्सपैरीमैन्ट्स एण्ड इन्वैन्शन्स, गैलिलियो गैलिली: द फॉलिंग बॉडीज़ ऐक्सपैरीमेन्ट। इसे http://www.juliantrubin.com/bigten/galileofallingbodies.html#galileodispute से हासिल किया गया।

फाउलर, एम.: गैलिलियो एण्ड आइंस्टाइन: लैक्चर नोट्स http://galileoandeinstein.physics.virginia.edu/tns.htm

गैलिली, गैलिलियो: 1632 (1953, संशोधित 1967), स्टिलमैन ड्रेक अनुवादक, अल्बर्ट आइंस्टाइन प्राक्कथन, डायलॉग कनसर्निंग द टू चीफ वर्ल्ड सिस्टम्स: टॉल्मैक एण्ड कोपर्निकन, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, बर्कले।

गैलिली, गैलिलियो 1638, 1914 (1954), हैनरी क्रू एण्ड अल्फॉन्सो डे सल्वियो, अनुवादक, डायलॉग्ज़ कनसर्निंग टू न्यू साइंसेज़, डोवर पब्लिकेशन्स इन्कॉ., न्यू यॉर्क।

मैथ्यूज़, एम.आर.: 1994, साइन्स टीचिंग: द रोल ऑफ हिस्ट्री एण्ड फिलॉसोफी ऑफ साइन्स, रटलेज, न्यू यॉर्क।

रैबिनोविट्ज़, एम.: 1990, फॉलिंग बॉडीज़: द ऑब्वियस, द सटल एण्ड द

रॉन्ग, आईईईई पावर एन्जीनियरिंग रिव्यू, 10, 27–31.
http://arxiv.org/ftp/physics/papers/0702/0702155.pdf

श्रैंक, एम.ए.: 2004, 'गैलिलियो वर्सेस ऐरिस्टॉटल ऑन फ्री फॉलिंग बॉडीज़', लॉजिकल ऐनालिसिस ऑफ फिलॉसोफी, अंक 7: हिस्ट्री ऑफ फिलॉसोफी ऑफ नेचर
http://philsci_archive.pitt.edu/archive/00002524/01/Galileo_vs_Aristotle_on_Free_Falling_Bodies.pdf

द गैलिलियो प्रॉजेक्ट: ऑन मोशन
http://galileo.rice.edu/sci/theories/onšmotion.html से हासिल किया गया।

द मैप प्रॉजेक्ट: द केस ऑफ फॉलिंग बॉडीज़ प्रॉजेक्ट,
http://ppp.unipv.it/map/pagine/intro_00.htm से हासिल किया गया।

द फिज़िक्स हाइपरटैक्स्टबुक: फॉलिंग बॉडीज़,
http://hypertextbook.com/physics/mechanics/falling

थिंकक्वैस्ट: गैलिलियो,
http://library.thinkquest.org/29033/history/galileo.htm

यूनिवर्सिटी ऑफ हवाई: द नेचर ऑफ फिज़िकल साइन्स : द फर्स्ट साइन्टिस्ट, प्रोग्राम 13, लैसन 2.5.
http://honolulu.hawaii.edu/distance/sci122/Programs/p13/p13.html से हासिल किया गया।

यूनिवर्सिटी ऑफ हवाई: द नेचर ऑफ फिज़ीकल साइन्स : द न्यू फिज़िक्स, प्रोग्राम 14, लैसन 2.6.
http://honolulu.hawaii.edu/distance/sci122/Programs/p14/p14.html से हासिल किया गया।

वैस्टवे, एफ. डब्ल्यू.: 1929, साइन्स टीचिंग, ब्लैकी एण्ड सन, लन्दन ।

विकीपीडिया: गैलिलियो गैलिली,
http://en.wikipedia.org/wiki/Galileo_Galilei से हासिल किया गया।

यूट्यूब.कॉम: द हैमर एण्ड द फैदर,
http://www.youtube.com/watch?v+4mTsRZEMwA

कमल महेन्द्रू वैज्ञानिक सोच और बहुसांस्कृतिक सन्दर्भों में विज्ञान शिक्षा पर शोध करते हुए स्कूल ऑफ ऐजुकेशन, न्यू साउथ वेल्स विश्वविद्यालय, सिडनी में दो साल का अध्ययनकाल पूरा करके आए हैं। वे किशोर भारती (होशंगाबाद), एशियन वर्कर्स डैवेलपमैन्ट इन्सटीट्यूट (राउरकेला), एकलव्य (भोपाल), विद्या भवन ऐजुकेशन रिसोर्स सेन्टर (उदयपुर), और छत्तीसगढ़ ऐजुकेशन रिसोर्स सेन्टर (रायपुर) के साथ नज़दीकी तौर पर जुड़े रहे हैं। उन्हें विज्ञान तथा गणित के शिक्षण, शिक्षा में नए परिवर्तनों एवं ग्रामीण विकास के क्षेत्र में काम करने का तीस सालों से भी ज़्यादा का अनुभव है। उनसे इस पते पर सम्पर्क किया जा सकता है : kmahendroo@yahoo.com

---

स्कूली शिक्षक : परिवर्तन के वाहक

विजय वर्मा

भारत में स्कूली शिक्षा में सुधार के लिए किए गए प्रयोगों, जैसे कि होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम, ने यह दर्शाया है कि अच्छे स्तर की शिक्षा प्रदान करने के अभिक्रम में शिक्षक अति महत्वपूर्ण होते हैं। जब भी कोई शिक्षक सुधार के विचार को मन से अंगीकार कर लेता है तो सुधारों के सफल होने की सम्भावना होती है। पर जब भी शिक्षक का रवैया प्रतिकूल या उदासीन होता है तो सुधार निश्चित रूप से असफल हो जाते हैं।

पाठ्यक्रम विकास या पाठ्यपुस्तकें तैयार करने की सामान्य प्रक्रिया बेहद केन्द्रीकृत गतिविधि होती है। खासतौर पर जब प्रक्रिया एनसीईआरटी जैसे संगठनों के नेतृत्व में की जा रही हो, ऐसी जिसमें चीज़ों के ऊपर से नीचे उतरने के सीढ़ी जैसे ढाँचे वाला मार्ग अपनाया जाता है। ऐसा माना जाता है कि अधिकांश बुद्धिमत्ता ऐसे संगठनों द्वारा गठित 'विषय विशेषज्ञों' के समूह या पैनल में होती है। इनमें कुछ थोड़े से ऐसे शिक्षकों की मामूली भागीदारी भर होती है जिन्हें मुख्य रूप से उनके उपलब्ध होने की सहूलियत के कारण चुन लिया जाता है। ऐसे प्रयास आमतौर पर कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों को नज़रअन्दाज़ कर देते हैं। एक पाठ्यक्रम (जिसके सफलतापूर्वक लागू किए जा सकने की सम्भावना हो) को विकसित करने में हमें विषय की माँगों के प्रति तो संवेदनशील होना चाहिए। जिन बच्चों के लिए इसे बनाया जा रहा हो उनके विचारात्मक विकास को, स्कूल में उपलब्ध संसाधनों को, और सबसे महत्वपूर्ण, उन शिक्षकों की तैयारी को भी ध्यान में रखना चाहिए जिन्हें वास्तव में शिक्षण का कार्य करना है। इसे करने का सिर्फ़ एक ही तरीका है कि इस ज़िम्मेदारी के लिए गठित समूह उस क्षेत्र के शिक्षकों को इस प्रक्रिया के केन्द्रीय पात्र के रूप में स्वीकार करे। समूह को इस कदर स्वयं ही हर बात का निदान बतानेवाला रवैया भी नहीं अपनाना चाहिए कि शिक्षकों को शिक्षण प्रक्रिया में उनके अपने दृष्टिकोण और अनुभव को सम्मिलित करके पाठ्यक्रम से अपनत्व बनाने का मौका ही न मिले।

जो हमने अभी कहा है उसे समझने के लिए कोई बहुत बड़े प्रयास की ज़रूरत नहीं है। तो प्रश्न यह उठता है कि इन सिद्धान्तों का पालन के बजाय उल्लंघन क्यों ज़्यादा होता है? इस छोटे से लेख के बाकी हिस्से में हम ऐसा होने के पीछे के कारणों की पड़ताल करने की कोशिश करेंगे।

एक प्रमुख कारण जिसकी तरफ हमने इशारा किया है वह है व्यवस्था की नियंत्रण बनाए रखने और कोई महत्वपूर्ण विकेन्द्रीकरण न होने देने की प्रवृत्ति। एनसीईआरटी द्वारा नेशनल करीकुलम फ्रेमवर्क (एनसीएफ) 2005 बनाने और फिर इस दस्तावेज़ को आधार बनाकर पाठ्यक्रम व स्कूली पाठ्यपुस्तकें विकसित करने की हालिया गतिविधि पर गौर करें। पूरे देश में विचार-विमर्श का जाल फैलाने के प्रयास में देश भर से विशेषज्ञों को लाया गया। मेरे खयाल से इस प्रयास के कहीं बेहतर नतीजे मिलते अगर इसे दिल्ली में केन्द्रीकृत न किया गया होता। बेहतर होता शुरुआत के लिए चार क्षेत्रीय केन्द्र चुने जाते। और फिर एक बार राष्ट्रीय रूपरेखा तैयार हो चुकने के बाद इन केन्द्रों को पर्याप्त स्वायत्तता से काम करने दिया जाता। इससे न केवल पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के चार स्वतंत्र सेट मिलते, जो खुद एनसीएफ 2005 में वर्णित वांछनीय लक्ष्यों में से एक है, बल्कि इससे क्षेत्रीय सामर्थ्य को बढ़ावा मिलता और विकेन्द्रीकरण को प्रोत्साहन मिलता। इससे पाठ्यक्रम विकास और पाठ्यपुस्तक लेखन की पूरी प्रक्रिया में, वास्तविक स्कूल शिक्षकों की महती भागीदारी की सम्भावनायें पैदा होतीं। इस सोच के विरुद्ध एक तर्क यह दिया जाता है कि इस प्रयास को सार्थक बनाने के लिए पर्याप्त क्षेत्रीय क्षमताएँ उपलब्ध नहीं हैं। पर यह तो चूज़े और अण्डे वाली शास्त्रीय समस्या है। क्षेत्रीय क्षमताएँ कैसे विकसित होंगी जब तक उन्हें विशेष रूप से प्रोत्साहित नहीं किया जाएगा?

कुछ हद तक, यह मानना पड़ेगा कि विभिन्न सामाजिक और शैक्षिक कारणों की वजह से स्कूली शिक्षकों का औसत सामर्थ्य वह नहीं है जो होना चाहिए। तो हम इस बारे में क्या कर सकते हैं? आजकल यह लगभग एक स्थापित तथ्य है कि वे लोग शिक्षक बन जाते हैं 'जो कुछ भी बेहतर नहीं कर सकते।' स्कूली शिक्षकों का पेशेवर समूह (काडर) विकसित करने के काम में सरकार की तरफ से भी कोई मदद नहीं मिलती। क्योंकि सरकार अतिरिक्त-शिक्षकों की भरती जैसी नीतियों का आक्रामक रूप से पालन कर रही है। ये नीतियाँ मूलत: शिक्षा प्रदान करने की लागत को कम करने और साथ ही शिक्षक संघों की शक्तियों पर नियंत्रण लगाने के उद्देश्य से बनाई गई हैं। इस सब में यह भुला दिया जाता है कि स्कूली शिक्षा के स्तर में तब तक सुधार नहीं आएगा जब तक कि स्कूली शिक्षकों के स्तर में सुधार न हो। यह करने का एकमात्र तरीका है कि उनके काम करने की स्थितियों को (और यहाँ मेरा मतलब केवल तनख्वाह से नहीं है) अधिक आकर्षक बनाया जाए, ताकि प्रतिभावान लोग इस व्यवसाय के प्रति आकर्षित हों। इसके लिए स्कूलों में बेहतर सुविधाएँ उपलब्ध कराने की ज़रूरत होगी। शिक्षकों के लिए काम करने का बेहतर वातावरण, बेहतर परिवेश, बेहतर बुनियादी ढाँचा, काम करने की बेहतर दशाएँ, बेहतर पुस्तकालय और प्रयोगशालाएँ ज़रूरी होंगी। साथ ही ऐसे सक्रिय कदम उठाने होंगे जिनसे शिक्षकों को सरकारी शिक्षा विभागों में छोटे से छोटे कर्मचारियों के व्यापक स्तर पर फैले आधिपत्य से मुक्त किया जा सके।

स्कूलों में स्तरीय शिक्षा प्रदान करने में शिक्षकों की केन्द्रीय भूमिका की बात करने का आजकल सेमिनार सर्किटों में चलन-सा हो गया है। यदि इसे व्यवहार में लाया जा सके तो इससे न केवल स्कूली शिक्षकों की शैक्षिक क्षमता के स्तर में सुधार आएगा बल्कि शिक्षण के प्रति उनकी प्रतिबद्धता भी बढ़ेगी। स्कूलों में शिक्षकों के अनुपस्थित रहने की बढ़ती घटनाएँ चिन्ता का विषय है। इस पर शीघ्र ध्यान देने की ज़रूरत है। मैं मानता हूँ कि केवल शिक्षकों की जवाबदेही के लिए कानून बनाकर इस समस्या को सुलझाना बहुत मुश्किल है। पर यह भी स्पष्ट है कि कोई कदम तो उठाना ही पड़ेगा, ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि शिक्षक नियमित तौर पर स्कू ल में उपस्थित रहें। पर केवल इतने से काम नहीं चलेगा। वे शिक्षक, जिन्हें स्कूल से अनुपस्थित रहने का कोई खेद नहीं है, सिर्फ इसलिए पढ़ाना शुरू नहीं कर देंगे कि सरकार ने उनके लिए कानून बना दिया है। छात्रों के प्रदर्शन के लिए उनके शिक्षकों को भी जवाबदेह ठहराने का विचार मन में आ सकता है। पर आप ऐसी व्यवस्था में यह कैसे कर सकते हैं जिसमें निचली कक्षाओं में मूल्यांकन करने पर कम से कम ज़ोर दिया जाता है। निचली कक्षाओं में ही असफलता के आघात से बच्चों को बचाने की आड़ में सबसे अधिक नुकसान होता है।

साफ तौर पर बात मूल्यों पर आकर टिक जाती है कि व्यक्ति को बिना किसी विवशता के अपनी पूरी क्षमताओं के साथ अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। हमारे समाज में व्यावसायिक प्रतिबद्धताओं के प्रति जवाबदेही में लापरवाह रवैए के बढ़ते हुए प्रमाण मौजूद हैं। शिक्षकों का अनुपस्थित रहना तथा अच्छे प्रदर्शन में कमी इसका सिर्फ एक उदाहरण है। इसका एक सम्भावित कारण यह हो सकता है कि पारिवारिक परम्पराओं के लगातार टूटने और आधुनिकता के हमलों के फलस्वरूप मध्यमवर्गीय परिवारों में बढ़ती हुई बुद्धिहीन व्यावसायिकता के कारण घर पर अच्छे

संस्कार ग्रहण करने के मौके कम होते जा रहे हैं। बच्चों के लिए अच्छे मूल्य सीखने का दूसरा स्रोत स्कूल हो सकता है। लेकिन वहाँ भी स्थिति बिगड़ जाती है। इसके पीछे एक कारण तो बच्चों के सामने शिक्षकों का अक्सर खराब उदाहरण पेश करना है, और दूसरा है बहु-सांस्कृतिक एवं बहु-धार्मिक समाज में औपचारिक तौर पर नैतिकता और मूल्यों की बातें सिखाने के साथ जुड़ी समस्याएँ। आप किसकी नैतिकता और किसके मूल्य सिखाते हैं? और चूँकि ऐसे प्रश्नों की जड़ें पारम्परिक रूप से धार्मिक उपदेशों में रहीं हैं। किसी के भी पास इनके सबके द्वारा स्वीकार्य उत्तर नहीं रहे हैं, और इसलिए हम अन्ततः कोई भी उत्तर नहीं सिखा पाए हैं। मेरा मानना है कि समय आ गया है अब ऐसे उपदेशों को धर्म के बाहर तलाशा जाए। साथ ही इस तरह के विषयों को स्कूल में पढ़ाने के लिए कारण और तर्क से बना एक आधार विकसित किया जाए। आशा है कि ऐसे पाठ्यक्रम पढ़ाने से और ऐसे विचार-विमर्शों से शिक्षक और जनसाधारण, दोनों में ही बदलाव आएगा जिससे पेशे और उत्तरदायित्व के प्रति प्रतिबद्धता बढ़ेगी, और इसी की सबसे ज़्यादा ज़रूरत है।

संक्षेप में, इस छोटे से लेख में हमारा तर्क यह रहा है कि स्कूलों में अच्छी शिक्षा व्यवस्था होने के लिए अच्छे और प्रतिबद्ध शिक्षकों का होना अत्यावश्यक है। पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के विकास में शिक्षकों की भूमिका बढ़ना चाहिए और इसके लिए इन प्रक्रियाओं का विकेन्द्रीकरण ज़रूरी है। हमें ज़्यादा गुणी लोगों को इस व्यवसाय की ओर आकर्षित करना चाहिए और इसके लिए हमें न केवल तनख्वाहें बढ़ाना चाहिए बल्कि शिक्षकों के काम करने की दशाओं और उन्हें उपलब्ध सुविधाओं में भी सुधार लाना चाहिए। पर, इस सबका भी कोई अर्थ नहीं निकलेगा जब तक हम इसके साथ शिक्षकों की जवाबदेही भी नहीं बढ़ाते जिसके लिए न केवल वैधानिक प्रक्रियाएँ ज़रूरी होंगी, बल्कि हमारी स्कूली व्यवस्था द्वारा शिक्षकों और छात्रों, दोनों में ही मूल्यों का उचित बोध भी जगाना पड़ेगा।

विजय शंकर वर्मा दिल्ली विश्वविद्यालय में डीन (योजना) व भौतिक शास्त्र के प्राध्यापक रहे हैं। सेवानिवृति के बाद वे वर्तमान में अम्बेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली में सलाहकार (योजना) हैं। उन्होंने होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम में दिल्ली विश्वविद्यालय के शैक्षिक समूह की भागीदारी का समन्वयन किया है। उनसे इस पते पर सम्पर्क किया जा सकता है: varma2@gmail.com

विज्ञान का इतिहास

समय के झरोखे से विज्ञान की यात्रा

नन्दिता नारायणसामी

विज्ञान के इतिहास के बारे में सोचते हुए, जो पहली चीज़ मेरे दिमाग में उभरी, वह थी बच्चों के एक स्वास्थ्यवर्धक पेय पदार्थ का विज्ञापन। विज्ञापन में कहा गया है कि उस उत्पाद में प्रकृति और विज्ञान एक साथ मौजूद हैं, और इसलिए वह पोषक तत्वों के पूरक के तौर पर श्रेष्ठ है! वह कम्पनी हमें यह विश्वास दिलाती है कि प्रकृति इसके जटिल पोषक तत्व प्रदान करती है और विज्ञान इसके खनिज प्रदान करता है। जाहिर तौर पर इस विज्ञापन के बारे में, यदि हम तार्किक दृष्टि से सोचें तो निष्कर्ष यह निकलता है कि खनिज प्रकृति का हिस्सा नहीं हैं। मेरी अज्ञानता को क्षमा करें। मैं अभी तक यह सोचती आई थी कि विज्ञान हमेशा से प्रकृति की कार्यप्रणाली का अध्ययन या उसकी जाँच करने का साधन रहा है। यदि हम यूरोपीय और एशियाई, दोनों साहित्यों में पीछे मुड़कर देखें, तो पाते हैं कि प्रकृति से अभिभूत होने के भाव के साथ उसकी शक्ति को समझने और उसको इस्तेमाल करने की मानव जाति की तलाश के बीच निकट सम्बन्ध काफी स्पष्ट दिखाई देता है। इस पूरे प्रसंग ने मुझे विज्ञान को लेकर हमारी समझ के बारे में आत्मविश्लेषण करने पर मजबूर कर दिया, साथ ही यह सोचने पर भी मजबूर किया कि समय के साथ यह दृष्टिकोण कैसे बदला है।

विज्ञान को अँग्रेज़ी में साइन्स कहते हैं। साइन्स लैटिन शब्द 'साइंशिया' से निकला है जिसका अर्थ है ज्ञान। भौतिक चीज़ें कैसे काम करती हैं, विज्ञान यह खोजने का और इसके बारे में मानवीय समझ को विकसित करने का प्रयास है। विज्ञान, वर्तमान में मौजूद दुनिया की जाँच-पड़ताल करने के लिए, पाँच इन्द्रियों के द्वारा किए गए भौतिक दुनिया के निरीक्षण से प्राप्त ज्ञान का

सम्पूर्ण संग्रह है। ऑक्सफोर्ड शब्दकोष में विज्ञान को निरीक्षण एवं प्रयोगों द्वारा किए जाने वाले भौतिक तथा प्राकृतिक विश्व के ढाँचे और व्यवहार के सर्वांग अध्ययन को समाहित करने वाली बौद्धिक व प्रायोगिक गतिविधि के रूप में परिभाषित किया गया है।

प्राचीन दुनिया के बचे हुए कई महत्वपूर्ण पुस्तकीय स्रोतों के द्वारा आधुनिक विज्ञान के ठीक-ठीक उद्भव तक पहुँच पाना सम्भव है। कई प्राचीन सभ्यताओं ने साधारण अवलोकन द्वारा व्यवस्थित ढंग से खगोलीय जानकारियाँ इकट्ठी की थीं। हालाँकि उन्हें ग्रहों व तारों के वास्तविक भौतिक ढाँचे के बारे में कोई ज्ञान नहीं था, फिर भी उनकी कई सैद्धान्तिक व्याख्यायें प्रस्तावित की गईं। कई जगह के लोगों को मानव शरीर विज्ञान के बारे में बुनियादी तथ्य ज्ञात थे, और कई सभ्यताओं में कीमिया (आलकेमी) प्रचलित थी। सुमेर (अब इराक) में ई.पू. 3500 के आसपास अपने उद्भव के समय से, मेसोपोटेमियाई लोगों ने बेहद परिपूर्ण मात्रात्मक और सांख्यकीय आँकड़ों के साथ दुनिया के कुछ अवलोकनों को दर्ज करने के प्रयास शुरू किए। पूर्व-सुकरात युग का दार्शनिक थेलेस, जिसे 'विज्ञान का पिता' कहा जाता है, पहला व्यक्ति था जिसने प्राकृतिक घटनाओं जैसे बिजली कड़कने व भूकम्पों के लिए गैर-अलौकिक व्याख्याओं की परिकल्पना की।

प्राकृतिक संसार की ऐसी अनुभव पर आधारित जाँच-पड़तालों का विवरण, प्राचीन यूनान सहित (उदाहरण के लिए थेलेस, अरस्तु और अन्य लोगों के द्वारा) सभी प्राचीन सभ्यताओं में मिलता है, वहीं वैज्ञानिक तरीकों के इस्तेमाल किए जाने के लिखित दस्तावेज मध्यकाल में प्रकट होते हैं। प्राचीन भारत धातुविज्ञान का प्रारम्भिक प्रणेता था, जिसका सबूत दिल्ली का पिटवां लोहे का स्तम्भ है। प्राचीन भारतीयों को लोहे के निर्माण और उन घटकों को तैयार करने में महारथ हासिल थी, जिन्हें लोहे के साथ गलाकर मिलाने से नरम लोहा प्राप्त किया जाता है। ऐसे लोहे को आमतौर पर भारतीय इस्पात कहा जाता है। उनके पास ऐसे कारखाने थे जहाँ संसार की सबसे प्रसिद्ध तलवारें बनाई जाती थीं। प्राचीन चीन चार महान आविष्कारों की जन्मस्थली था: दिशासूचक यंत्र, बारूद, कागज़ और छपाई।

फिर भी, आज के विज्ञान की शुरुआत प्रारम्भिक आधुनिक काल के उस दौर से मानी जाती है जिसे वैज्ञानिक क्रान्ति के नाम से जाना जाता है, और जो यूरोप में 16वीं तथा 17वीं शताब्दी में घटित हुई। वैज्ञानिक शब्द भी अपेक्षाकृत हाल ही का है - यह सबसे पहले विलियम व्हेवैल के द्वारा 19वीं शताब्दी में गढ़ा गया। उससे पहले प्रकृति की खोजबीन करने वाले लोग अपने को प्राकृतिक दार्शनिक कहते थे।

वैज्ञानिक पद्धतियों को आधुनिक विज्ञान में इतना आधारभूत माना जाता है कि कुछ लोग (खासकर विज्ञान के दार्शनिक और कार्यरत वैज्ञानिक) प्रकृति सम्बन्धी पुरानी जाँच-पड़तालों को पूर्व-वैज्ञानिक मानते हैं। हालाँकि विज्ञान के इतिहासकारों ने पारम्परिक रूप से विज्ञान को इतने व्यापक ढंग से पारिभाषित किया है कि उसमें वे जाँच-पड़तालें भी आ जाती हैं।

विज्ञान की और अधिक फैली हुई आधुनिक परिभाषा में प्राकृतिक विज्ञान शाखाओं के साथ-साथ सामाजिक विज्ञान और व्यवहारवादी विज्ञान शाखाओं को भी शामिल किया जा सकता है। इसकी परिभाषा कुछ इस तरह की जा सकती है - किसी भी क्रियाकलाप का निरीक्षण, पहचान, विवरण, प्रायोगिक जाँच-पड़ताल और सैद्धान्तिक व्याख्या करना विज्ञान है। फिर भी, वर्तमान में प्रचलित अन्य परिभाषाएँ अभी भी प्राकृतिक विज्ञान की शाखाओं, जिनका भौतिक संसार के क्रियाकलापों से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, को ही विज्ञान का सच्चा वाहक मानती हैं।

ऊपर के वृतान्त में जो एक भाव सर्वोपरि रूप से विद्यमान है, वह है प्रेक्षण पर दिया गया जोर। वैज्ञानिकों से ऐसे तटस्थ प्रेक्षक होने की उम्मीद की जाती है, जो वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करके विभिन्न सिद्धान्तों की निर्णायक रूप से या तो पुष्टि करते हैं, या उन्हें झूठा सिद्ध करते हैं। आँकड़े एकत्रित करने में इन विशेषज्ञों की पहले से कोई धारणाएँ नहीं होना चाहिए, और उन्हें तटस्थ, वस्तुनिष्ठ प्रेक्षणों से तार्किक पद्धति के द्वारा सिद्धान्तों को निकालना चाहिए। विज्ञान की एक बड़ी शक्ति यह है कि वह स्वयं को सुधार लेता है, क्योंकि जब कोई सिद्धान्त अतर्कसंगत सिद्ध हो जाते हैं तो वैज्ञानिक उन्हें सहज ही त्याग देते हैं।

इसलिए मेरी राय में तो विज्ञान को ऐसी परियोजना की तरह देखा जाना चाहिए जिसका लक्ष्य प्राकृतिक संसार का ज्ञान प्राप्त करना है। मेरे लिए विज्ञान, जीवन जीने का ऐसा ढंग है जो विचार को प्रोत्साहित करता है और मनुष्य के अस्तित्व को प्रभावित करने वाले किसी भी पहलू के बारे में स्वस्थ पूछताछ को बढ़ावा देता है। परन्तु, विज्ञान की दार्शनिक परिभाषा होगी, कि मूल रूप से यह किसी चीज़ के बारे में प्रश्न पूछने का व्यवस्थित और अध्ययन-आधारित तरीका है। इसलिए विज्ञान समझ का ऐसा मार्ग है जो और गहरे सवालों की ओर ले जाता है।

लेकिन, आज की विज्ञान शिक्षा (खासकर भारत में) निरीक्षण और पूछताछ, दोनों को नाममात्र का ही महत्व देती है। सच तो यह है कि विद्यार्थियों में इन दोनों आवश्यक क्षमताओं को क्रमशः निरुत्साहित किया जाता है। इससे वे स्वयं सोचने में असमर्थ, यंत्रवत जीने वाले लोगों के समूह बनकर रह जाते हैं जिनमें विश्लेषण करने की कोई क्षमताएँ नहीं होतीं। दुर्भाग्य से विज्ञान केवल एक विषय बनकर रह गया है – एक ऐसे पाठ्यक्रम का हिस्सा जो रोमांचक गहन पूछताछ के बजाय, स्मृति में संचित जानकारी को पेश करने की क्षमता को प्रोत्साहित करता है। विज्ञान के विद्यार्थी से प्रायः मेहनती, परम्परावादी, अविद्रोही और आज्ञाकारी होने की आशा की जाती है। ऐसा बच्चा, जिसे मस्ती पसन्द है, जो दूर के सपने देखता है, जिसके विचार क्रान्तिकारी हैं और जो बेचैन करने वाले प्रश्न पूछता है, उसे निरुत्साहित किया जाता है, और उसे 'विज्ञान के लिए अयोग्य' समझा जाता है।

यदि हम शुरू में उल्लेख किए गए विज्ञापन पर फिर से नज़र डालें तो पाते हैं कि इसमें विज्ञान का निरूपण एक यंत्र–मानव की तरह किया गया है। यहाँ एक और बीमारी दिखाई देती है, जिससे विज्ञान आजकल ग्रस्त है – विज्ञान, तकनीक (टैक्नोलॉजी) का पर्याय बन गया है। विज्ञान के इतिहास में तकनीकी उन्नतियों और आविष्कारों की मील के पत्थरों जैसी शृंखला रही है। दोनों हमेशा एक दूसरे के परिपूरक रहे हैं। लेकिन, हमें यह याद रखने की ज़रूरत है कि वे दो स्वतंत्र तत्व हैं । तकनीक, विज्ञान का ऐसा उत्पाद है जो उसे आगे समझने में सहायक होता है। भारत में इधर लम्बे समय से तकनीकी शिक्षा, शुद्ध विज्ञान की शाखाओं पर भारी पड़ती रही है। इसके परिणामस्वरूप बीएससी की डिग्री की तुलना में इंजीनियरिंग के लिए भारी भीड़ आतुर रहती है। समाज में यह नज़रिया बदला नहीं है। हाल ही में मेरी एक विद्यार्थी ने दिल्ली विश्वविद्यालय में बीएससी ऑनर्स का पाठ्यक्रम छोड़कर, सुदूर उत्तर प्रदेश के किसी अनजान से निजी कॉलेज के एक इंजीनियरिंग कोर्स में दाखिला ले लिया: कारण कि इससे शादी के बाज़ार में उपयुक्त दूल्हा पाने की उसकी सम्भावनाएँ बेहतर हो जाएँगी!

यहाँ लियोनार्दो द विंची का जिक्र करना अटपटा लग सकता है। पर यूरोपीय नवजागरण का यह महान, बहुमुखी प्रतिभा का धनी व्यक्ति इस बात की जबरदस्त मिसाल था कि वैज्ञानिक पद्धति को कैसे रचनात्मक ढंग से जीवन के हर क्षेत्र में, कला और संगीत में भी, लागू किया जा सकता है। यद्यपि, वह अपनी नाटकीय और भावपूर्ण कलाकृतियों के लिए सबसे अधिक जाना जाता है। परन्तु लियोनार्दो ने दर्जनों प्रयोग (सावधानी से सोचे–विचारे हुए) और भविष्योन्मुख आविष्कार किए। वे भी उस समय जब सही ढंग से आधुनिक विज्ञान और आविष्कारों की शुरुआत भी नहीं हुई थी। विज्ञान के प्रति लियोनार्दो का दृष्टिकोण निरीक्षण–आधारित था। वह किसी भी क्रियाकलाप का अत्यधिक विस्तार और बारीकी से वर्णन और चित्रण करके उसे समझने का प्रयास करता था। वह प्रयोगों या सैद्धान्तिक व्याख्याओं पर बहुत जोर नहीं देता था। जैसा कि होता आया है, चूँकि उसने लैटिन और गणित में विधिवत शिक्षा नहीं पाई थी, इसलिए तत्कालीन विद्वानों ने वैज्ञानिक लियोनार्दो को ज़्यादातर नज़र अन्दाज़ कर दिया।

लियोनार्दो की कहानी का जिक्र करने का कारण, उस विभाजन रेखा की ओर ध्यान दिलाना है जो हमारे ज्ञान की खोज के बीच खिंच गई है। ऐसा माना जाने लगा है कि कलाएँ और विज्ञान मिल नहीं सकते, वे एक–दूसरे से सर्वथा अलग हैं। इसके अतिरिक्त स्वयं विज्ञान की शाखाओं को काटकर फिर असंख्य उप–शाखाओं में बाँट दिया गया है, जो हरेक अपने को ऊँचा समझते हुए दूसरे से दूरी बनाए रखती है। इसीलिए आज भारत में वैज्ञानिक की छवि एक गैर–सामाजिक, गैर–रचनात्मक व्यक्ति की बन गई है, जो अपनी प्रयोगशाला की अवास्तविक दुनिया में ही सिमटा रहता है। यह ख्याल ही विद्यार्थियों की भारी संख्या को विज्ञान के क्षेत्र से दूर रखने के लिए काफी है।

अतः विज्ञान की यात्रा जो प्रकृति को समग्र रूप से समझने से शुरू हुई, आज उस स्तर से गिरकर विभिन्न विषयों का अस्वस्थ समूह बनकर ही रह गई है, जिसमें हरेक अपने क्षेत्रीय अहंकार से ग्रस्त दूसरों को उपेक्षा की दृष्टि से देखता है। एक आशा भरी बात यह है कि हमने समस्या का निदान कर लिया है और यह रोग का इलाज करने की दिशा में पहला कदम है। ज्ञान की इस खोज यात्रा में, महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टाइन के ये शब्द हमारे पथ–प्रदर्शक होना चाहिए: 'अल्प ज्ञान खतरनाक होता है, और बहुत ज़्यादा ज्ञान भी उतना ही खतरनाक होता है। पर मुख्य बात है कभी प्रश्न पूछना बन्द नहीं करना।'

नंदिता नारायणसामी ने अपनी पीएच.डी., बायोकैमिस्ट्री में एम.एस. विश्वविद्यालय, बड़ौदा से 1996 में पूरी की। अभी वे श्री वेंकटेश्वर कॉलेज, नई दिल्ली में सह–प्राध्यापक हैं। उनकी रुचि विज्ञान को अधिक प्रयोगात्मक और सीखने की प्रक्रिया को अधिक विश्लेषणात्मक बनाने में है। उनसे इस पते पर सम्पर्क किया जा सकता है : nandita1993@gmail.com

वैज्ञानिक भी गलती करते हैं

नीरजा राघवन

हम बच्चों को वैज्ञानिकों की असाधारण प्रतिभा के बारे में तो अक्सर पढ़ाते हैं, पर उनके द्वारा की गई गलतियों का ज़िक्र शायद ही कभी करते हैं। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि बच्चे खोज की पूरी प्रक्रिया को जादुई मानने लगते हैं। जैसे कि एक रॉकेट पृथ्वी से उड़ान भरता है और तेज़ी से सीधे अपने लक्ष्य पर पहुँच जाता है, हमेशा! यह बेहद ज़रूरी है कि हम विषय को पढ़ाने में वैज्ञानिकों के जीवन की भ्रांतिपूर्ण सोच वाली वास्तविक घटनाओं को भी शामिल करें। क्योंकि इससे खोज की पूरी प्रक्रिया पर से रहस्य का पर्दा उठता है और वह विज्ञान के विद्यार्थी और शिक्षक, दोनों के और करीब आ जाती है। इसके अलावा, यह हमें दिखाता है कि कैसे हम हमेशा ही सोचने, पुनः सोचने और कई तथाकथित सत्यों पर फिर वापस जाने की लगातार चलती, अपने को दोहराती प्रक्रिया का हिस्सा होते हैं, और यह भी एहसास कराता है कि सीखने का यही मतलब होता है। इन्टरनेट पर विज्ञान के इतिहास के बारे में सूचना का पिटारा मौजूद है और इस विषय पर कई बेहतरीन किताबें भी उपलब्ध हैं। इस तरह की कुछ बेहतरीन किताबों में से एक है जॉन ग्रिबिन की *'ए हिस्ट्री ऑफ साइन्स'* । चूँकि इन थोड़े से पन्नों में इस तरह के विषय के साथ न्याय कर पाना असम्भव है। हम नीचे कुछ संक्षिप्त उदाहरण दे रहे हैं जिससे पता चलता है कि कैसे भ्रांतिपूर्ण सोच लम्बे समय से वैज्ञानिक खोजों का उसी तरह हिस्सा रही है, जिस तरह वह आम लोगों के जीवन का हिस्सा होती है।

- 400 साल तक एलैक्ज़ैन्ड्रिया के चिकित्सा स्कूल में पढ़ाया गया कि शरीर की धमनियों में हवा होती है! द्वितीय शताब्दी ईसवीं में गेलन ने इस बात की वास्तविक जाँच की। पता चला कि धमनियों में रक्त होता है। तब जाकर लोगों ने इस भ्रांतिपूर्ण विचार को त्यागा कि धमनियों में हवा होती है। गेलन (लगभग 129 ई. से 210 ई.) ने चिकित्सा के क्षेत्र में काफी महत्वपूर्ण योगदान दिया। वह पहला चिकित्सक था जिसने मरीज़ों की बीमारियों का पता लगाने के लिए नाड़ी की गति का प्रयोग किया, और वह काफ़ी हद तक सफल हुआ।
- गेलन का कहना था कि यकृत में रक्त लगातार बनता रहता है। उसने रक्त को शरीर के लिए एक ज्वलनशील ईंधन माना। वह रक्त के दोहरे परिचालन को स्वीकार नहीं करता था। उसका मानना था कि भोजन सीधे रक्त में परिवर्तित हो जाता है। लोगों को उसकी बात पर इस कदर विश्वास था कि वे 14 सदियों तक ऐसा ही मानते रहे! आखिरकार, जब विलियम हार्वी ने 1628 में इस मान्यता पर सवाल खड़े करने की हिम्मत की तब जाकर रक्त के संचरण की खोज हो पाई। हार्वी ने पहले रक्त के संचरण पर विचार किया। उसने हर संकुचन के साथ हृदय द्वारा फेंके जाने वाले रक्त की मात्रा को नोट किया। एक पूरे दिन के दौरान रक्त की कुल मात्रा वज़न में शरीर द्वारा ग्रहण की गई भोजन की मात्रा से ज़्यादा थी। मोटी गणनाएँ करके हार्वी ने, शक की कोई गुंजाइश न छोड़ते हुए, आसानी से साबित कर दिया कि रक्त का पुनः उपयोग होता होगा।
- उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में लामार्क ने जीवन के उद्भव के बारे कुछ सही व कुछ गलत सिद्धान्त प्रस्तावित किए। उसके गलत अनुमानों में से थे – फ्लैमिंगो के पैर लम्बे हो जाते हैं क्योंकि वह पानी के सम्पर्क से बचने के लिए हमेशा खुद को खींचता रहता है, और दूसरा यह कि प्रयासपूर्वक हासिल किए गए लक्षण विरासत के रूप में पाए जा सकते हैं।

डार्विन और वॉलेस प्रजातियों के उद्भव के मुद्दे पर करीब–करीब एक मत थे। जो बात ध्यान देने योग्य है वह यह कि डार्विन ने अपने निष्कर्षों को अधिकांशतः समुद्री जहाज़ों पर अपने प्रवास के दौरान किए गए विस्तृत निरीक्षणों से हासिल किया। लेकिन वॉलेस ने अपने निष्कर्षों तक पहुँचने के लिए चट्टानों के सर्वेक्षणों के अलावा भरपूर अध्ययन किया। उसने माल्थस की किताबें चाट डालीं। उसने ब्राज़ील के जंगलों में अन्वेषण करते हुए व नमूने इकट्ठे करते हुए चार साल बिताए।

विद्यार्थियों व शिक्षकों के द्वारा उपरोक्त बातों से निकाले जा सकने वाले कुछ बिन्दुः मात्र निरीक्षण करने में, उसके साथ–साथ चलने वाले अध्ययन द्वारा कैसे मदद मिल सकती है? क्या आप पत्तियों और फूलों का वर्गीकरण इस तरह कर सकते हैं – (अ) केवल निरीक्षण द्वारा (ब) निरीक्षण के साथ–साथ अध्ययन भी करके तथा अपने नतीजों की तुलना कर सकते हैं। जीवन के विकास के बारे में लामार्क से डार्विन तक वैज्ञानिकों की सोच किस तरह से बदली? आज वैज्ञानिक प्रयासपूर्वक हासिल किए गए लक्षणों को विरासत में पाने के सिद्धान्त के बारे में क्या सोचते हैं?

- अरस्तु ने कहा था कि सौ क्यूबिट की ऊँचाई से नीचे गिरती एक सौ पौंड की गेंद ज़मीन पर, एक क्यूबिट ऊँचाई से एक पौंड की गेंद के गिरने से पहले पहुँचेगी। गैलिलियो ने कहा कि वे दोनों एक ही समय पर पहुँचेंगी।

इस बात से विद्यार्थियों व शिक्षकों द्वारा निकाले जा सकने वाले बिन्दुः आप कैसे पता लगाएँगे कि कौन सही है? इनमें से एक से गलती कैसे हुई?

- केवल अपने चिन्तन और अपने सामाजिक दर्जे के दम पर अरस्तु (384–322 ई.पू.) ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि पृथ्वी ब्रम्हाण्ड के केन्द्र में है और सूर्य तथा बाकी ग्रह उसका चक्कर लगाते हैं। सभी ने इस बात को मान लिया। यह सहज समझ में आने वाली बात थी कि ठोस पृथ्वी गति नहीं कर सकती। सोलहवीं शताब्दी में कोपर्निकस ने थोड़े अनिश्चय के साथ इसके उलट बात सुझाई कि सूर्य केन्द्र में है और पृथ्वी तथा अन्य ग्रह उसका चक्कर लगाते हैं। पर कोपर्निकस भी इस निष्कर्ष पर अवलोकन द्वारा नहीं पहुँचा। वह विचार करके यहाँ पहुँचा।

इस बात से विद्यार्थियों व शिक्षकों द्वारा निकाले जा सकने वाले बिन्दु: फिर जब सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में गैलिलियो ने अपने टैलिस्कोप से यह साबित कर दिया कि कोपर्निकस सही था तो उसे विरोध का सामना करते हुए जेल क्यों जाना पड़ा? ऐसी कौन सी चहेती मान्यताएँ हैं जिन्हें हम पकड़े रहते हैं और छोड़ना नहीं चाहते। तब भी नहीं जब उसके विपरीत पर्याप्त साक्ष्य मौजूद हों?

- पानी की बूँदों में चलते सूक्ष्म जीवों के बारे में वान ल्यूवेनहॉक की खोज: तब तक लोग यही मानते थे कि पानी की बूंदों में कोई जीवित चीज़ नहीं होती है।

इस बात से विद्यार्थियों व शिक्षकों द्वारा निकाले जा सकने वाले बिन्दु: इसी तरह, हम अपने आसपास की चीज़ों के बारे में क्या धारणाएँ बनाते हैं? हम उन्हें सही/गलत कैसे साबित कर सकते हैं?

ऊपर दिए गए उदाहरणों को शुरुआत बिन्दु की तरह इस्तेमाल करते हुए, शिक्षक बच्चों के साथ कक्षा में रोचक गतिविधियाँ कर सकते हैं, जो निस्संदेह शिक्षकों व बच्चों, दोनों को ही सीखने के भरपूर मौके देंगी।

कहा जाता है कि बल्ब के तन्तु के लिए एडिसन को हज़ारों भिन्न-भिन्न तन्तुओं को आजमाना पड़ा था ताकि उम्दा रोशनी देने वाले तथा लम्बे समय तक चल सकने वाले सही पदार्थ का चुनाव हो सके। आखिरकार उसने सही पदार्थ खोज लिया। जब किसी अखबार के एक रिपोर्टर ने उससे पूछा कि सही पदार्थ चुनने के पहले हज़ारों दफा असफल होने पर उसे कैसा लगा, तो उसका जवाब था: 'मैं एक बार भी असफल नहीं हुआ! बस मेरे प्रयोग में हज़ारों सीढ़ियां थीं।'

नीरजा राघवन, पीएच.डी., अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, बंगलौर में एकेडेमिक्स तथा पैडागॉजी सलाहकार हैं। उनसे इस पते पर सम्पर्क किया जा सकता है: neeraja@azimpremjifoundation.org

---

मैंने विज्ञान क्यों चुना

समझ की तलाश

ऊषा पोनप्पन

जब मैंने अपने अन्तर्मन से यह जानना चाहा कि मैंने विज्ञान को अपना कार्यक्षेत्र क्यों चुना, तब मैंने पहली बार अपने विद्यार्थी जीवन में झाँककर उस खास क्षण को ढूँढ़ने की कोशिश की जो इस दिशा का निर्णायक मोड़ था। सच तो यह कि कोई एक ऐसी खास घटना नहीं थी जिसने विज्ञान में मेरे भविष्य की बुनियाद रखी। मेरे खयाल से कई परस्पर असम्बन्धित घटनाओं की ऐसी शृंखला थी जिसने मेरी सोच को विकसित किया और जो अन्ततः मुझे इस रोमांचक मार्ग पर लाई जिसे मैं आज इतना चाहती हूँ।

वैज्ञानिक लेख लिखते समय हम प्रयोग की संकल्पना की रूपरेखा देते हैं और फिर परिणामों की शृंखला होती है जो निष्कर्षों तक ले जाती है। किन्तु विज्ञान को अपना कार्यक्षेत्र चुनने के बारे में लिखना, इससे भिन्न है। यह अधिकांश रूप से मेरी स्मृति और प्रारम्भिक जीवन की घटनाओं से सम्बन्धित कुछ किस्सों पर आधारित है। मेरा रुझान हमेशा जीवविज्ञान के प्रति रहा। उसमें मैं अच्छा प्रदर्शन करती रही। यद्यपि मैं निश्चित तौर पर नहीं कह सकती कि जीवविज्ञान के लिए मुझमें कोई जन्मजात प्रतिभा थी या यह मेरे मार्गदर्शकों का प्रभाव था जिसने इसे मेरी सहज प्रवृत्ति बना दिया।

यदि किसी घटना को निर्णायक मोड़ कह सकते हैं, तो वह थी हाईस्कूल पूरा करने पर मुझे राष्ट्रीय वैज्ञानिक प्रतिभा छात्रवृत्ति मिलना। एनसीईआरटी द्वारा दी जाने वाली इस योग्यता छात्रवृत्ति ने बुनियादी विज्ञान के मार्ग पर भविष्य के वैज्ञानिकों के निर्माण को प्रोत्साहित किया है। छात्रवृत्ति परीक्षा का एक महत्वपूर्ण पहलू जो मेरी स्मृति में अंकित है, वह छात्रवृत्ति आवेदन के साथ भेजी गई मेरी प्रोजैक्ट रिपोर्ट। वह नर्वस सिस्टम में सेल्यूर कम्युनिकेशन से सम्बन्धित थी। प्रसंगवश, नर्वस

सिस्टम में सेल्यूर कम्युनिकेशन तथा उसकी क्रिया क्षमताओं में अभी भी मुझे रुचि है। मेरा प्रमुख ध्यान अब इस पर केन्द्रित है कि प्रतिरोध तंत्र में कोशिकाएँ कैसे सम्प्रेषण करती हैं। अपने चुनाव और अपनी कार्ययात्रा को पीछे मुड़कर देखने पर मैं कह सकती हूँ कि वैज्ञानिक प्रतिभा छात्रवृत्ति ने मेरे लिए वे दरवाज़े खोल दिए जो अन्यथा उतनी आसानी से मेरे लिए नहीं खुलते।

सचमुच इस अवसर ने मुझे अपनी महत्वाकांक्षाओं की ओर बढ़ने के लिए जोरदार आवेग और प्रोत्साहन प्रदान किया। ऐसे ही उपक्रमों की सहायता से विज्ञान को बढ़ावा देने और वैश्विक अर्थव्यवस्था में युवा पीढ़ी को प्रतिस्पर्धा करने योग्य बनाने के महत्वाकांक्षी लक्ष्य को हासिल किया जा सकता है। एनसीईआरटी, स्नातक और स्नातकोत्तर शिक्षा के दौरान गर्मियों की छुट्टियों में शोध–केन्द्रित प्रशिक्षण देने के लिए भी छात्रवृत्ति देती थी, ताकि विद्यार्थियों के युवा मन को शोध,जिज्ञासा के लिए ढाला और प्रशिक्षित किया जा सके। मैं मानती हूँ कि कम से कम मेरे मामले में तो यह कार्यक्रम सफल रहा। चूँकि शोध के लिए मुझमें सहज अभिरुचि थी, इसलिए इससे मुझे मनचाहा अवसर और प्रोत्साहन मिला। इस छात्रवृत्ति ने मुझे स्नातकोत्तर अध्ययन के लिए उचित संस्थान चुनने और एक बहुत जाने–माने वैज्ञानिक को अपना मार्गदर्शक चुनने में भी मेरी मदद की। मेरे लिए तो यह एक उपहार था। मेरे अधिकांश साथियों को अपनी इच्छित प्रयोगशाला चुन सकने की सुविधा नहीं थी, आमतौर पर जो उपलब्ध था, उन्हें उसी में से चुनना था।

अब बड़े प्रश्न पर आएँ: मैं वैज्ञानिक क्यों बनी? प्रश्नों को हल करने की महिमा अपने आप में पर्याप्त प्रेरक तत्व है। फिर भी, मुझे लगता था कि वैज्ञानिक होने में सबसे अच्छी बात है किसी भी प्रतिमान के – चाहे वह जीवविज्ञान में हो या चिकित्सा विज्ञान में – काम करने के रहस्य को समझने का प्रयास। इसकी अतिरिक्त विशेषता है, इस समझ को व्यक्ति का स्वास्थ्य सुधारने के लिए कारगर उपचारों में बदलने की योग्यता। अतः समझने की तलाश ने ही मुझे वहाँ पहुँचाया जहाँ मैं आज हूँ। यहाँ चुनौती, कुछ नया करने और समस्याओं को हल करने के अवसर विज्ञान देता है। यहाँ वैज्ञानिक के रूप में व्यक्ति बच्चे जैसी जिज्ञासा से प्रश्न पूछना जारी रख सकता है।

स्नातक शिक्षा के दौरान मेरा लक्ष्य संतति–निरोध के टीके खोजने के उद्देश्य से नए विकसित हो रहे प्रजनन प्रतिरोधन के क्षेत्र में क्रियाविधियों और स्थानान्तरण अभिक्रमों पर काम करना था। इसके पीछे भारत में जनसंख्या नियंत्रण की बढ़ती हुई आवश्यकता को हल करने में सहयोग देने की कामना थी। नए स्नातक विद्यार्थी की तरह शीघ्र ही मुझे अहसास हुआ कि यद्यपि मेरे लक्ष्य तो ऊँचे थे, प्रयोगशाला में उनको हासिल करने का प्रयास चुनौती भरा था। फिर भी परेल, मुम्बई स्थित आईसीएमआर के संस्थान, इंस्टीट्यूट फॉर रिसर्च इन रिप्रोडक्शन (प्रजनन शोध संस्थान) में अपनी स्नातक शिक्षा को पीछे मुड़कर देखने पर मैं अनेक प्यारी स्मृतियाँ पाती हूँ। यही वह जगह थी, जहाँ मैंने वैज्ञानिक तलाश का सारसूत्र समझा। यह सत्य जाना कि कैसे हर प्रयोग, चाहे उससे आशानुकूल परिणाम निकले या न निकले, अन्ततः हमें कुछ सिखाता है। यहीं मैंने अपनी जाँच–पड़ताल, वैज्ञानिक प्रस्तुतिकरण और सम्प्रेषण की क्षमताओं को प्रखर बनाया।

> *दो सम्भावित नतीजे होते हैं। यदि परिणाम परिकल्पना की पुष्टि करता है, तो आपने एक खोज की है। यदि परिणाम परिकल्पना के विपरीत है, तो भी आपने एक खोज की है।*
>
> *– ऐनरिको फर्मी*

स्कूलों में विज्ञान जैसे पढ़ाया जाता है, इसकी मेरी स्मृतियाँ और अनुभव हैं। यह कैसे भिन्न हो सकता है, मैं इस सबके बारे में लम्बे समय से सोचती रही हूँ। मैं विश्वविद्यालय में, स्नातकोत्तर शिक्षा में और चिकित्सा शिक्षा में, शिक्षण से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हूँ। सिर्फ तथ्यों को बताने के बजाय प्रश्न पूछने की पद्धति द्वारा पढ़ाने में मुझे सबसे अधिक आनन्द आता है। मैं पाती हूँ कि मेरे विद्यार्थी सबसे अधिक तब सीखते हैं जब वे प्रयोगों की रचना करने में, या किसी मॉडल का परीक्षण करने के लिए उपयुक्त प्रश्न गढ़ने में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं। परन्तु, जैसा कि मुझे याद है, हमारे स्कूलों में विज्ञान अक्सर सीधे जानकारी प्रदान करने के ढंग से पढ़ाया जाता है। इस अपेक्षा के साथ कि विद्यार्थी उसे रटकर याद कर लेंगे, और परीक्षाओं में, जो ज्ञान पाने की इस पद्धति की ही जाँच करने के लिए बनाई गई होती हैं, उस जानकारी को वापस प्रस्तुत कर देंगे। किसी परिकल्पना का परीक्षण करने के लिए प्रश्न गढ़कर किसी विषय की गहरी समझ बनाने पर और अवधारणात्मक ज्ञान पर शायद ही कोई जोर दिया जाता था। प्रश्न पूछने को बढ़ावा तो दिया जाता था, पर वे प्रायः विद्यार्थियों से पूछे जाते थे। दोनों ओर से होने वाले प्रश्नोत्तर के दौर केवल दोहराने वाले सत्रों तक ही सीमित थे, जो बहुत ही कम होते थे। मेरा व्यक्तिगत विचार है कि हमारे हाईस्कूल पाठ्यक्रम के अन्तर्गत प्रयोगशालाओं में प्रयोग करते हुए – चाहे रसायनशास्त्र के, भौतिक शास्त्र के या जीवविज्ञान के– हमने करके देखने का जो अनुभव पाया, उसी ने हमारे तकनीकी कौशल और समस्याओं को हल करने के कौशल की बुनियाद रखी। विज्ञान कैसे काम करता है,

यह देखने के लिए स्वयं प्रयोग करने के ऐसे सजीव तरीकों पर यदि अधिक समय लगाया जाए तो इससे विज्ञान की ओर उन्मुख युवा शक्ति को विकसित करने में निश्चित ही मदद मिलेगी। अब, जबकि हम एक जानकारी–बहुल समाज में जी रहे हैं, जहाँ उत्कृष्ट पाठ्यपुस्तकें और अन्य स्रोत पुस्तकें उपलब्ध हैं, विद्यार्थियों को कक्षा में आने से पहले पाठ्यसामग्री को पढ़कर आने की सलाह देना चाहिए, और कक्षा में होने वाला शिक्षण, चर्चाओं और बौद्धिक आदान–प्रदान पर केन्द्रित होना चाहिए। अवधारणाओं को आत्मसात करने के लिए पर्याप्त समय दिया जाना चाहिए, और मुख्य विषयों के बारे में गहरी अन्तर्दृष्टि प्रदान की जाना चाहिए ताकि कक्षा में बिताए गए समय का उपयोग ज्ञान को आत्मसात करने और विचार करने के लिए हो सके।

मैं सच में मानती हूँ कि कक्षाओं में ऐसा नया नज़रिया, शिक्षा में क्रान्तिकारी बदलाव लाएगा और विद्यार्थियों को जीवनपर्यन्त सीखने वाले और उत्साहपूर्वक समस्याओं का समाधान करने वाले बनने की क्षमता प्रदान करेगा। इसका साफ–साफ अर्थ है कि राष्ट्र की तरह हमें शिक्षकों में निवेश करना होगा – शिक्षक जो अत्यन्त कुशल हों – क्योंकि सिर्फ वे ही हमारे देश के युवाओं में समझने की अन्तर्निहित तीव्र जिज्ञासा जगाकर उन्हें एक चमकदार और चुनौतीपूर्ण भविष्य की ओर ले जाने वाले प्रकाश स्तम्भ हो सकते हैं।

ऊषा पोनप्पन, पीएच.डी., यूनिवर्सिटी ऑफ अरकेन्सॉस फॉर मेडिकल साइंसिज़, लिटिल रॉक, अरकेन्सॉस में माइक्रोबायलॉजी और इम्यूनोलॉजी की प्राध्यापक के रूप में शिक्षण और शोध में संलग्न हैं। उनसे इस ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है : *PonnappanUsha@uams.edu*

ऐसा क्यों है, ओ स्फ़िंक्स, कि छालें पेड़ों की
कोई भी मनचाहा रंग नहीं पा सकतीं
कत्थई रंग की दिखतीं सारी एक समान
फरक हैं पर पेड़ों के फल, फूल और नाम?

पेड़ों की यूनिफार्म: छाल

प्रकृति ने फूलों, फलों, पशुओं और पक्षियों पर अपनी तूलिका से तमाम रंग बिखेरे हैं। परन्तु जब पेड़ों की छालों की बारी आई तो लगता है कि जैसे उसकी कल्पनाशक्ति चुक गई हो। सब पेड़ों की छाल कत्थई होती है, हालाँकि रंग की गहराई में थोड़ी विविधता होती है।

ऐसा क्यों है? प्रकृति निश्चित ही बहुत बुद्धिमान है। फूलों में रंगीन पंखुरियों को रचने के पीछे उसका एक उद्देश्य है। यदि फूल इतने आकर्षक नहीं होते, तो मधुमक्खियाँ और तितलियाँ इतनी आसानी से उनके पास उनका रस चूसने और परागण करने नहीं जातीं। परागण के बिना फूल प्रजनन कैसे करते? यह फूलों का सुन्दर स्वरूप ही है जो इन चंचल उड़ने वाले सन्देशवाहकों को अपनी ओर खींचता है, और फूलों की प्रजाति को बनाए रखने का इंतजाम करता है। लेकिन पेड़ों की छालों का ऐसा कोई काम नहीं है। उनकी भूमिका तो पेड़ के तने के लिए आवरण की तरह काम करने की है जिसमें आकर्षक दिखने की कोई ज़रूरत नहीं है। उसके जिन गुणों का महत्व है वे हैं: उनकी कठोरता और मजबूती, न कि उनका रंग। इसलिए प्रकृति ने पेड़ की छाल को मजबूत और कठोर बनाकर उसके इन्हीं पक्षों पर ध्यान दिया है।

असल में पेड़ की छाल में मौजूद मुख्य रासायनिक यौगिक, जो टैनिन कहलाते हैं, कत्थई रंग के होते हैं। उनके कारण ही पेड़ की छाल का रंग सब जगह एक–सा होता है। हाँ उस रंग की गहराई अलग–अलग पेड़ों में टैनिन की अलग–अलग मात्रा होने के कारण बदलती रहती है।

नीरजा राघवन द्वारा लिखित, सुबीर रॉय द्वारा चित्रांकित और चिल्ड्रन्स बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित पुस्तक *'आई वन्डर व्हाइ'* (आईएसबीएन 81–7011–937–5) के पृष्ठ 86–87 से लिया गया अंश।

मुझे विज्ञान क्यों पसन्द नहीं

पार्थ सिंह

फिल्म 'डैड पोएट्स सोसायटी' में रॉबिन विलियम्स कहता है कि व्यवसाय दो तरह के होते हैं: एक वे जो जीवन चलाते हैं, और दूसरे वे जो जीवन की सुन्दरता दिखाते हैं। मैं मानता हूँ कि विज्ञान पहली श्रेणी में आता है, और मैं दूसरी श्रेणी का हिस्सा बनना चाहूँगा। पर अभी मैं पहली श्रेणी का हिस्सा हूँ क्योंकि वाणिज्य पढ़ रहा हूँ।

मैंने सोलह साल की उम्र में विज्ञान छोड़ने का निर्णय लिया था। अब मैं अठारह साल का हूँ। यदि मुझे आज यह निर्णय लेना होता तो भी मैं यही निर्णय लेता। स्कूल में विज्ञान ऐसा था जैसे किसी पाँच सितारा होटल में मेज़ पर सजा भोजन। देखने में तो वह बहुत स्वादिष्ट लगता है पर खाने पर पता चलता है कि वह एक जैसा और बेस्वाद है। मैं इस 'बेस्वाद खाने' का दोष खाने वाले के बजाय बनाने वाले को दूँगा। इस तुलनात्मक लेख के ज़रिये मैं बस अपनी राय ज़ाहिर करना चाहता हूँ कि (स्कूल में) विज्ञान को ठीक से नहीं पकाया जाता। बस इसे तश्तरियों(किताबों) में डालकर हमारे सामने परोस दिया जाता है। हम उसकी तरफ आकर्षण से देखते हैं, पर जब हम उसे खाते (पढ़ते) हैं तो एक जैसा और स्वादहीन पाते हैं।

यही विज्ञान को लेकर मेरी नापसन्दगी की जड़ है। इस जड़ का लेना–देना विज्ञान से उतना नहीं है, जितना उसे पढ़ाने के ढंग से है।

हाईस्कूल स्तर पर, विज्ञान को रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र व जीवविज्ञान में बाँट दिया जाता है। एल्यूमीनियम का निष्कर्षण, प्रकाश का एकरेखीय संचरण और मनुष्य का विकास – इनमें से कोई भी मेरे अन्दर उस उल्लास का एक अंश भी पैदा नहीं कर पाता जो इन प्रक्रियाओं को इस्तेमाल करने वालों (और इन क्रियाकलापों को खोजने वालों) ने अनुभव किया होगा। मेरा हठी अन्तर्मन उस ज्ञान को स्वीकार करने से मना कर देता है जिसे मैं महसूस नहीं कर सकता। पर फिर, साहित्य को छोड़कर, मैं इतिहास, भूगोल या एकाउन्ट्स को भी तो महसूस नहीं कर पाता। लेकिन तब भी मैं इन विषयों को उतना नापसन्द तो नहीं करता। फिर विज्ञान के प्रति यह अरुचि क्यों?

कारण बहुत साफ है। विज्ञान हमें सृजन करना सिखाता है – इसीलिए मैं उसका आदर करता हूँ। पर हर बार वह मुझे निराश करता है क्योंकि मैं उसे *महसूस* नहीं कर पाता। क्या उस चीज़ को ज़्यादा नापसन्द करना मानवीय स्वभाव नहीं है, जिसे आपने पहले बहुत सम्मान से देखा हो और बाद में उसने आपको निराश कर दिया हो?

मैं जानता हूँ कि मैं न्यायोचित बात नहीं कर रहा हूँ, क्योंकि ऐसा लगता है कि मैं खुद को दोष से मुक्त (कम से कम कुछ हद तक) रख रहा हूँ। यदि मैं विज्ञान को इतना अधिक सम्मान देता हूँ, तो जो मैं उससे चाहता हूँ उसे पाने के लिए मुझे मेहनत करना चाहिए। क्योंकि मृत प्रतीत होते विज्ञान से जो मैं सीखूँगा उससे मुझे जीवित लोगों की सेवा करना होगी ।

जैसा कि मैंने शुरुआत में ही बताया, मैं ऐसे व्यवसाय का हिस्सा होना चाहता हूँ जो जीवन की सुन्दरता दिखाए। दुर्भाग्यवश, विज्ञान मेरा यह उद्देश्य पूरा नहीं करता क्योंकि यह तथ्यों पर ज़रूरत से ज़्यादा निर्भर है। इसमें बहु– दृष्टियों की गुंजाइश नहीं है। सिवाय तब के, जब वैज्ञानिक इस बात पर भिड़ते हैं कि अन्तरिक्ष घुमावदार है या सीधा!

मुझे साहित्य से प्यार है। मुझे नए उद्यम करना भी प्रिय है। जब मैं बच्चा था, तो उम्मीद करता था कि बड़ा होकर वैज्ञानिक बनूँगा और एड्स का उपचार ढूँढ़ निकालूँगा। आज मैं आशा करता हूँ कि मैं उद्यमी बनूँ और उन लोगों को रोज़गार (और आजीविका का साधन) दूँ जिन्हें एड्स है।

विज्ञान बुरा नहीं है; बस वह पर्याप्त अच्छा नहीं है।

पार्थ सिंह, आर. एन. पोद्दार स्कूल, मुम्बई से हैं। उन्होंने हाल ही में बारहवीं कक्षा की बोर्ड परीक्षा दी है।
उनसे paarth.singh@hotmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।

मुझे रसायन शास्त्र से प्यार क्यों है?

नीरजा राघवन

जब मैं नौवीं कक्षा में गई, तब तक मैं किसी भी दूसरी स्कूली छात्रा जैसी थी। मुझे इस बात का ज़रा–सा भी अनुमान नहीं था कि मैं कॉलेज में क्या करूँगी। कभी मैं साहित्य लेने के बारे में सोचती, कभी कला, तो कभी चिकित्सा क्षेत्र में जाने के बारे में सोचती। आश्चर्य नहीं कि मेरा भविष्य एक धुंधली तस्वीर जैसा था। वह तस्वीर, साथियों के बीच लोकप्रिय तात्कालिक चलन के अनुसार, बदल–बदल कर नए रूप लेती रहती थी।

और फिर, हमारी रसायन शास्त्र की शिक्षिका से मेरा सामना हुआ। वे कक्षा में आईं। मैंने उनकी सनक और अनोखी विशेषताओं के बारे में सुन रखा था: कि उनकी साड़ी में हर प्लेट सही जगह पर होती थी, वे काफी ज़्यादा मेकअप लगाती थीं, छत की ओर देखते हुए बात करती थीं। और वाकई, इन सभी बातों में वे अपनी ख्याति के अनुरूप ही निकलीं।

पर जो बात मुझे किसी ने नहीं बताई थी, वह यह कि मिस गोमेज़ में गजब का आकर्षण था।

उन्होंने पहले क्षण से ही मेरे ध्यान को बाँध लिया! जब वे रसायन शास्त्र के किसी विषय (मुझे याद नहीं कि कौन–सा विषय था) को प्रवाहपूर्ण ढंग से समझाने लगीं तो मैं उन्हें मंत्रमुग्ध होकर सुनती रही। मुझे बस इतना याद है कि उस पहले पीरियड के बाद मैं पहले जैसी नहीं रह गई थी। हे भगवान, वह कितना विस्मयकारी था! उनकी स्पष्टता विस्मित कर देने वाली थी। जब शब्द उनकी ज़बान से निकलते थे तो ऐसा लगता था कि किसी काँच जैसी साफ किताब के पन्ने मेरी आँखों के सामने पलट रहे हों। क्या अद्भुत विषय था! यदि इस आकर्षक क्षेत्र में और सीखने की सम्भावना से मेरे मुँह में पानी आ सकता तो निश्चित आ गया होता। मुझे एकदम पता चल गया था कि मुझे आगे क्या पढ़ना था – रसायन शास्त्र, रसायन शास्त्र और ज़्यादा रसायन शास्त्र। यदि कोई इस विषय को पीपों में भरकर मेरे गले में उतारता, तो मैं खुशी–खुशी पी जाती। बल्कि, उस दिन से, जब मैं टाइमटेबल के मुताबिक अपना बैग लगाती तो रसायन शास्त्र का पीरियड टाइमटेबल में चमकता और झिलमिलाता प्रतीत होता, जैसे कि उसकी अपनी कोई रोशनी हो। मैं सोचती कि आठों के आठों पीरियड रसायन शास्त्र के क्यों नहीं हो सकते। और जिन दिनों रसायन शास्त्र के दो पीरियड होते, मैं नाचती हुई–सी स्कूल जाती।

आप पूछ सकते हैं कि इस शिक्षिका में ऐसा क्या खास था। एक बात तो यह कि वे अपनी बात कहने में बहुत स्पष्ट थीं। उनको एक बार सुनना ही मेरे लिए पर्याप्त होता। मैं समझ जाती जो वे कह रही होती थीं। इसके अलावा हर व्याख्या के दौरान वे विषय की तर्कशृंखला को स्पष्ट रूप से उभार कर सामने ले आती थीं। जब वे उसे पढ़ाती थीं तो रसायन शास्त्र बेहद आसान प्रतीत होता था। वे मेरे स्कूल पूरा कर लेने तक मेरी शिक्षिका रहीं। मुझे पक्का भरोसा था कि बोर्ड परीक्षा (अन्तिम स्कूली परीक्षा) में रसायन शास्त्र में मेरे अंक बाकी विषयों की तुलना में कहीं ज़्यादा होंगे। पर ऐसा हुआ नहीं। पाँच विषयों में मुझे सबसे कम अंक रसायन शास्त्र में ही मिले थे।

पर महत्वपूर्ण बात यह थी कि किसी भी टेस्ट या परीक्षा में मेरे प्रदर्शन ने इस विषय के प्रति मेरे प्रेम पर कुछ खास असर नहीं डाला। क्योंकि मिस गोमेज़ ने मुझे कुछ बहुमूल्य चीज़ दे दी थी: एक विषय के लिए ऐसा प्रेम जो लगभग भक्ति के जैसा था। रसायन शास्त्र मेरा पहला सच्चा प्यार था। मुझे इसकी परवाह नहीं थी कि मेरा प्यार एक तरफा था। मैं इस विषय को आगे कॉलेज में पढ़ने के प्रति दृढ़संकल्प थी। क्यों? क्योंकि मैं एक नया तत्व खोजने वाली थी: उसका नाम रखती नीरजानियम, आदि आदि। मैरी क्यूरी मेरी आदर्श थीं, उनके बाद मिस गोमेज़ का नम्बर आता था।

स्कूल में मेरे अन्तिम वर्ष के दौरान दूरदर्शन ने एक टीवी कार्यक्रम प्रसारित किया था। इसमें उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय में रसायन शास्त्र में पीएच.डी. की पढ़ाई कर रहे युवा लड़के–लड़कियों का साक्षात्कार लिया था। उस समय उनसे ज़्यादा अवसादग्रस्त युवाओं को ढूँढ़ना शायद मुश्किल था। उनकी शारीरिक भाषा उनकी निराशा को बयान कर रही थी। मुरझाए हुए इन हतोत्साहित युवाओं ने कैमरे के सामने अपने भाग्य को कोसते हुए खूब विलाप किया। उनके अनुसार उन्होंने ऐसा क्षेत्र चुन लिया था जिसमें भविष्य बनाने (कैरियर) की कोई सम्भावना नहीं थी। उनमें से कई ने उँघते हुए अपनी चिन्ता व्यक्त की कि कैसे उन लोगों को अपनी पीएच.डी. की थीसेस जमा करने के बाद बेरोज़गार रहना पड़ेगा।

अगले ही दिन मैं अपने सहपाठियों के प्रश्नों की गोलाबारी के सामने थी। उन सब को पता था कि मैंने कॉलेज में रसायन शास्त्र पढ़ने के सपने संजोये हुए हैं।

'तो?' उन्होंने व्यंगभरी मुस्कान के साथ पूछा। 'तुमने कल रात का कार्यक्रम देखा?'

'हाँ।' मैंने शान्त भाव से उत्तर दिया।

'और? अब तुमने कॉलेज में क्या पढ़ने का निर्णय लिया है?'

'रसायन शास्त्र,' मैंने बिना झिझक के कहा।

'क्या तुम पागल हो?' वे स्तब्ध रह गए। और फिर मेरे ऊपर गिद्धों की तरह टूट पड़े। क्या मुझे ज़रा–सा भी अन्दाज़ा है कि मैं क्या करने जा रही हूँ? एक व्यर्थ ज़िन्दगी ? एक ज़िन्दगी जिसमें कैरियर की कोई सम्भावना नहीं है?

पर मुझे तो सचमुच कोई भी आशंका नहीं थी। मैंने उनके हमलों का शान्त ढंग से जवाब दिया, 'मुझे उस विषय से प्यार है और मैं वही पढ़ना चाहती हूँ।'

इसी से पता चलता है कि मैं किस गहनता से इस विषय से प्यार करती थी। मुझे रत्ती भर भी भय नहीं था। मेरा सीधा–सादा तर्क यह था कि जब कोई अपना प्रिय काम करता है तो उसे किसी दूसरी प्रेरणा की ज़रूरत नहीं होती। सालों बाद, जब मैंने रसायन शास्त्र से स्नातकोत्तर पढ़ाई पूरी की और फिर उसी में पीएच.डी. करने का निर्णय लिया तो मैंने मिज़ गोमेज़ को एक पत्र लिखा। मैंने उन्हें इतने लम्बे चलने वाले प्रेम सम्बन्ध का बीज बोने के लिए धन्यवाद दिया।

जब मेरे सामने कैरियर चुनने का सवाल आया, तब मुझे अहसास हुआ कि उन्होंने एक नहीं एक से ज़्यादा बीज बोये थे। क्योंकि इस समय तक मुझे यह स्पष्ट हो चुका था कि मुझे शिक्षक ही बनना है। यदि एक शिक्षिका मुझ पर इतना प्रभाव डाल सकती थी, तो क्या यह अच्छा नहीं होगा कि मैं भी इस तरह से किसी विद्यार्थी को प्रभावित कर सकूँ?

तो इस तरह एक समर्पित शिक्षिका ने मेरी ज़िन्दगी बदल दी। उनका प्रभाव कई तरह से मेरे जीवन पर पड़ा – ऊँचे दर्जे की पढ़ाई के लिए मेरे विषय के चयन पर, मेरे कैरियर चयन पर, तथा उस दृष्टि पर जिससे मैं रसायन शास्त्र और विज्ञान के बारे में सोचती हूँ।

मुझसे अक्सर पूछा गया है कि क्या इस शिक्षिका ने अपने सभी विद्यार्थियों को इसी तरह से प्रभावित किया: और इसका उत्तर है, नहीं। हालाँकि उनके अधिकांश विद्यार्थी मानते थे कि वे अच्छा पढ़ाती थीं, पर मैं उन थोड़े से विद्यार्थियों में से थी जो पूरी तरह से उनसे सम्मोहित थे।

मेरी कहानी का सन्देश यह है कि एक शिक्षक में इस हद तक ताकत होती है कि उसका प्रभाव तात्कालिक समय के पार जाता है। वह विषय को लेकर हमारे दृष्टिकोण को तो बदल ही सकता है, साथ ही हमारे कैरियर के चुनाव को भी प्रभावित कर सकता है। आज मैं यह ईमानदारी से कह सकती हूँ कि रसायन शास्त्र ऐसा विषय नहीं है जिसमें विज्ञान के बाकी विषयों की तुलना में रटने की कोई खास ज़्यादा ज़रूरत पड़े। क्योंकि मुझे भी यह इस ढ़ंग से पढ़ाया गया और आशा करती हूँ कि शायद ऐसा ही मैं भी पढ़ा सकी हूँ। धन्यवाद, मिस गोमेज़!

नीरजा राघवन से इस पते पर सम्पर्क किया जा सकता है: neeraja@azimpremjifoundation.org

एक मिसाल का अध्ययन

शिक्षा जनांदोलन की ओर – तमिलनाडु साइन्स फोरम (TNSF) और स्कूली शिक्षा

टी.वी.वेंकटेश्वरन

यह लेख 1980 के दशक के मध्य से 2008 तक शिक्षा में टीएनएसएफ की भूमिका के विकास का इतिहास प्रस्तुत करता है। शिक्षकों के लिए कम लागत की गतिविधियों के प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने से शुरुआत करके, टीएनएसएफ आज पूरे तमिल समाज को स्कूली शिक्षा पर ध्यान देने के लिए सक्रिय करने के अभियान में जुटा हुआ है।

स्वरूप विकसित होने के वर्ष

तमिलनाडु विज्ञान मंच (टीएनएसएफ) की स्थापना 1980 में, आईआईटी मद्रास के कुछ वैज्ञानिकों, विश्वविद्यालयों के शोध छात्रों और कुछ स्कूल तथा कॉलेज के शिक्षकों के मिलेजुले समूह द्वारा की गई थी। प्रारम्भिक वर्षों में इसकी गतिविधियाँ ज़्यादातर, पर्यावरण की बिगड़ती हालत पर चिन्ता जताने, विज्ञान शिक्षा में गतिरोध, विज्ञान तथा तकनीक का परमाणु बम बनाने के लिए उपयोग करने पर चिन्ता व्यक्त करने आदि तक सीमित थीं। धीरे–धीरे विद्यार्थी, शोधछात्र और शिक्षक लगातार टीएनएसएफ की ओर आकर्षित होते गए, और 1986 से यह विधिवत सक्रिय हो गया। यह समूह जिसने शुरुआत शहर में लोकप्रिय विज्ञान व्याख्यानों का आयोजन करने से की थी, अब लोगों को तारे दिखाने के लिए दूरदर्शी यंत्रों और स्लाइड प्रदर्शनों के साथ गाँव में जाने लगा! हो सकता है यह बात अजीब लगे, परन्तु भूखे और बेघर गाँव वाले भी तारों के बारे में सुनना चाहते थे। संसार के बारे में सहज जिज्ञासा और ज्ञान की प्यास अमीर, गरीब सभी को आन्दोलित करती है।

1987 में एक बड़ा मोड़ आया। टीएनएसएफ ने 'भारत जन विज्ञान जत्था' नामक राष्ट्रीय स्तर के एक विराट कार्यक्रम में भाग लिया। यह कार्यक्रम 'जनता के लिए विज्ञान, जनतंत्र के लिए विज्ञान, और खोज के लिए विज्ञान' के संदेश के साथ देश के कोने–कोने में गया। इसमें विज्ञान को न तो सिर्फ तथ्यों के संग्रह की तरह देखा गया, और न ही चमत्कारी

यंत्रों की तरह। विज्ञान को संसार को देखने के एक ऐसे ढंग की तरह देखा गया जो धार्मिक और विशेष समूहों के दृष्टिकोणों से बिलकुल अलग था।

तब तक राज्य के विभिन्न भागों में माध्यमिक स्कूलों के अनेक शिक्षक टीएनएसएफ से जुड़ गए थे। विज्ञान शिक्षा क्या है, इस पर टीएनएसएफ में जोशीली बहस शुरू हो गई थी। उस समय चल रही पारम्परिक शिक्षा दृष्टि पर सवाल उठाए गए जिसका जोर बोर्ड पर लिखने और भाषण देने (चॉक और टॉक) की पद्धति पर था। जो उत्तरों को कुशलतापूर्वक याद रखने की विभिन्न तरकीबों (जैसे नैमोनिक्स) की वकालत करती थी। इस प्रश्न पर कि 'क्या विज्ञान को, याद करने जैसे अवैज्ञानिक तरीके से सीखा जा सकता है?', और विज्ञान सीखने में प्रयोगों तथा जाँच–पड़ताल की भूमिका पर जोरदार वादविवाद हुआ। संयोग से यह वह समय था जब इंग्लैंड में विज्ञान शिक्षण की एक मूल रूप से नयी पद्धति का आविर्भाव हुआ, जो बाद में नफील्ड विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम का 'खोज–आधारित तरीका' कहलाया। पर हमारे सरकारी स्कूलों में, जिनमें अक्सर बुनियादी सुविधाएँ नहीं होतीं, सचमुच में प्रयोगों तथा गतिविधियों के आधार पर विज्ञान शिक्षण किया जा सकता है या नहीं, यह एक चुनौतीपूर्ण समस्या थी। इसी दौरान टीएनएसएफ का परिचय एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से हुआ (जो तब मध्य प्रदेश में विकसित किया जा रहा था) जो प्रयोगों और कम लागत की तरकीबों का इस्तेमाल करने वाली गतिविधियों पर जोर देता था। टीएनएसएफ के शिक्षकों को 'केरल शास्त्र साहित्य परिषद' (केएसएसपी) के काम को देखने का भी मौका मिला, जिसका जोर विज्ञान सीखने को 'आनन्दपूर्ण' बनाने पर था। टीएनएसएफ कार्यकर्ताओं और शिक्षकों की राय थी कि हमें दोनों से सीखना चाहिए – विज्ञान सीखने को आनन्ददायी बनाना और साथ ही साथ कम लागत/ बिना लागत के गतिविधि–आधारित तरीकों का उपयोग करना।

1988 के आसपास माध्यमिक स्कूल शिक्षकों को विभिन्न कम लागत/ बिना लागत के तरीकों की ओर उन्मुख करने की ओर सारे तमिलनाडु में प्रशिक्षण शिविरों की एक शृंखला का आयोजन किया गया। इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों को सफलता मिली, तथा और अधिक शिक्षक टीएनएसएफ की ओर आकर्षित हुए। यद्यपि औपचारिक स्कूलों में वास्तविक प्रभाव तो सीमित था, पर टीएनएसएफ ने अपनी बच्चों की मासिक पत्रिका–*थुलीर*–के पाठकों को विज्ञान क्लबों *थुलीर इल्लमों* का गठन करने को प्रोत्साहित किया। अनेक स्थानों पर बच्चों के विज्ञान उत्सवों का आयोजन किया गया। इनमें आयोजित कार्यशालाओं में प्रशिक्षित शिक्षकों ने स्रोत व्यक्तियों की भूमिका निभाई।

स्कूल के बाहर सीखना

टीएनएसएफ की निश्चित राय है कि जहाँ औपचारिक स्कूल को आवश्यक महत्व दिया जाना उचित है, वहीं हमें स्कूल के बाहर के अनौपचारिक क्षेत्र को नज़रअन्दाज़ नहीं करना चाहिए। इसी दृष्टि से *थुलीर इल्लम* इसकी गतिविधियों का प्रमुख क्षेत्र बन गए। *थुलीर इल्लमों* में कम से कम दो गतिविधियाँ तो होती ही थीं – टीएनएसएफ के द्वारा निकाली जाने वाली मासिक पत्रिका, *थुलीर*, का पढ़ना और उस पर चर्चा करना। धीरे–धीरे, कम से कम कुछ बच्चों में स्वयं करके देखो गतिविधियों को आजमाने का उत्साह जगने लगा। वृक्षारोपण, चर्चा, विज्ञान दौरे और ऐसी अनेक गतिविधियाँ *थुलीर इल्लमों* का अंग बन गईं।

बच्चों के साथ काम करने की इसकी प्रमुख भूमिका के कारण टीएनएसएफ तमिलनाडु में नेशनल चिल्ड्रन्स साइन्स काँग्रेस (एनसीएससी) का राज्य संयोजक बन गया। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य था: वैज्ञानिक स्वभाव को प्रोत्साहित करना, और वैज्ञानिक प्रक्रिया सीखना, अर्थात निरीक्षण, आँकड़ों का एकत्रीकरण, प्रायोगिक विश्लेषण, निष्कर्ष निकालना, और पूरी जानकारी को प्रस्तुत करना। तीन से पाँच बच्चों के समूहों ने अपनी टीमें बनाकर छोटी–छोटी शोध परियोजनाओं पर काम किया। उदाहरण के लिए, किसी गली में रिसते हुए नल से व्यर्थ बह जाने वाले पानी की मात्रा का आकलन करना, ऐसे परिवारों की संख्या का पता करना जिनके घरों में किसी प्रकार के कंपोस्ट खाद बनाने के गड्ढ़े हों, उनके गाँव में किस प्रकार के पक्षी पाए जाते हैं, किसी बस्ती में कितने प्रतिशत लोग ज्योतिष में विश्वास करते हैं, आदि। टीमों ने प्रयोग किए, बारीकी से विस्तृत निरीक्षण किए, अपनी एकत्रित जानकारी का विश्लेषण किया, और बाद में आयोजित की गई 'चिल्ड्रन्स साइन्स काँग्रेस' के सत्रों में अपनी खोजों को प्रस्तुत किया।

शिक्षकों को अनुकूल बनाने के माध्यम के रूप में बाल विज्ञान उत्सव

बाल विज्ञान उत्सव (चिल्ड्रन्स साइन्स फैस्टिवल–सीएसएफ) स्कूल के बाहर बच्चों और शिक्षकों के साथ आयोजित किया जाने वाला ऐसा कार्यक्रम है, जहाँ स्कूल की कक्षा में पढ़ाए जाने के ढंग से सर्वथा भिन्न तरीके से विज्ञान (और कभी–कभी सामाजिक विज्ञान) सीखने का प्रयास किया जाता है। सीएसएफ का मुख्य उद्देश्य बच्चों में स्कूल के प्रति फिर से रुचि जगाना, और विशेष रूप से शिक्षकों और पालकों को दिखाना कि सिखाने और सीखने की प्रक्रियाएँ कारगर होने के साथ–साथ रोचक, सार्थक, और आनन्ददायक भी बनाई जा सकती हैं।

सार रूप से, सीएसएफ के अन्तर्गत होने वाली गतिविधियों के दो प्रमुख केन्द्रीय तत्व थे। गतिविधियों का एक समूह विज्ञान की खास–खास अवधारणाओं को सिखाने के लिए कम लागत/ बिना लागत के प्रयोगों या खेलों पर केन्द्रित था। जैसे कि यह दिखाना कि हाइड्रोजन गैस को, प्रयोगशाला के महँगे उपकरणों के बिना, अण्डों के छिलकों और नींबू के रस से बनाना सम्भव है। इसी प्रकार भौतिक शास्त्र की कई अवधारणाओं जैसे जड़त्व, बर्नौली का नियम, वर्णक्रम का उत्सर्जन, और अन्य कई बातों को प्रदर्शित करने के लिए, पास–पड़ोस में आसानी से उपलब्ध हो सकने वाले, किसी उपाय भर की ज़रूरत पड़ती है। पारम्परिक लोक खेलों जैसे *पैंडी* (जिसे उत्तर में स्टापू कहते हैं) का नए ढंग से प्रयोग करके तमिल व्याकरण सिखायी जा सकती है, और ऐसी अनेक सम्भावनाएँ हैं। विभिन्न भूमिकाओं के अभिनय, पुतलियों और अन्य कई उपायों का प्रयोग सीखने–सिखाने की प्रक्रिया को अर्थपूर्ण और आनन्दपूर्ण बनाता है। ये सभी गतिविधियाँ खुद करके देखने वाली, व्यावहारिक, और करने में सहज थीं, तथा उनके साथ सरलतापूर्वक नए–नए प्रयोग किए जा सकते थे।

दूसरी तरफ, टीएनएसएफ ने ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों और विषयों का एकीकरण करने की, और हमारे आसपास के संसार को समेकित दृष्टिकोण से वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में देखने की कोशिश की। उदाहरण के लिए, रसोईघर में खाना बनाने की गतिविधि को वैज्ञानिक दृष्टि से देखा और गणित (विभिन्न चीज़ों की मात्राएँ/ अनुपात), स्वास्थ्य विज्ञान (सफाई), पोषण विज्ञान, रसायन शास्त्र (पकाना), ऊर्जा (विभिन्न प्रकार के चूल्हों का उपयोग और खाना पकाने के तौर तरीके), भौतिक शास्त्र और तकनीक (खाना बनाने में इस्तेमाल होने वाले विभिन्न उपकरण जैसे कि चाकू) आदि का आपस में सम्बन्ध दर्शाया। यह सिलसिला इतने पर ही नहीं रुका। रसोईघर में विज्ञान ने ऐसे मुद्दे भी उठाए कि: खाना कौन बनाता है? केवल औरतों को क्यों खाना बनाने के नीरस काम में गुलामों की तरह लगना पड़ता है? रसोईघर के स्थान का (जहाँ स्त्रियाँ दिन का अधिकांश समय बिताती हैं) घर के दूसरे हिस्सों (जैसे कि बैठक, जहाँ वे बहुत कम समय बिताती हैं) की तुलना में क्या दर्जा है? ऐसे अन्य सामाजिक आयामों को भी इसमें जोड़ा गया।

टीएनएसएफ मानता है कि विज्ञान और तकनीक के उपयोग की समीक्षा करना और सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता को रेखांकित करना महत्वपूर्ण है। इस उद्देश्य के लिए दो तरीके अपनाए गए। सबसे पहले तो जिस प्रकार सीएसएफ का आयोजन किया गया उसमें विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों के बच्चों का हेलमेल होना अपने आप आवश्यक हो गया। और इस तरह, वे एक नए 'सामाजिक यथार्थ' को देख सके जो उनके दैनिक अनुभव से एकदम परे था। सीएसएफ की मेहमान–मेजबान व्यवस्था ने इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मेहमान विद्यार्थियों को उत्सव की अवधि में स्थानीय विद्यार्थी अपने घरों में रखते हैं। इस घनिष्ठ सम्पर्क के द्वारा ही मेहमान विद्यार्थी और मेजबान विद्यार्थी एक–दूसरे के बारे में निकट से जान पाते हैं। हो सकता है कि वे दो भिन्न जातियों के हों, या धर्मों के या भिन्न सामाजिक–आर्थिक वर्गों के, लेकिन जब वे साथ रहते हैं तो वे मित्र बन जाते हैं, और एक दूसरे का सम्मान करना और खयाल रखना सीखते हैं। यह मेहमान–मेजबान व्यवस्था आपसी सामन्जस्य बनाने का और दूसरे को सचमुच आँखें खोलकर बिना पूर्वाग्रह के देखने का महत्वपूर्ण उपाय हो सकती है।

टीएनएसएफ की शब्दावली में विज्ञान में जाँच–पड़ताल के वे सभी क्षेत्र शामिल हैं जिनका तरीका वैज्ञानिक है। अतः सामाजिक विज्ञान भी सीएसएफ का हिस्सा है। वस्तुतः हाल के वर्षों में टीएनएसएफ विशेष 'सामाजिक विज्ञान उत्सव' आयोजित करने का प्रयास करता रहा है, जिनमें जाति, धर्म, पैसा, लोकतंत्र, भोजन, आवास, आदतें और रीति–रिवाज जैसे विषय उठाए जाते हैं और उनकी वैज्ञानिक तरीके से विवेचना की जाती है। टीएनएसएफ जहाँ एक ओर गतिविधि–आधारित शिक्षण में आस्था रखता है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक समीक्षा के प्रति निष्ठा को भी बेहद ज़रूरी मानता है।

टीएनएसएफ ने शिक्षकों के लिए अनेक मार्गदर्शक पुस्तिकाएँ निकालीं, जिनमें गतिविधियाँ, खेल और अभ्यास कार्य दिए गए। इसके काम ने सरकार पर भी दबाव बनाया। धीरे–धीरे टीएनएसएफ द्वारा विकसित की गई सामग्री का समावेश शासकीय पाठ्यपुस्तकों और शिक्षा व्यवस्था में होने लगा। इस अवधि में टीएनएसएफ का प्रमुख दृष्टिकोण इस कथन की मिसाल था: 'मैं सुनता हूँ और भूल जाता हूँ, मैं देखता हूँ और याद रखता हूँ, मैं करता हूँ और समझता हूँ।'

सीखने का आनन्द और बच्चों पर केन्द्रित शिक्षण

मध्यान्ह भोजन योजना के आगमन के साथ, तमिलनाडु के स्कूलों में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों की संख्या में अच्छी वृद्धि दिखाई देने लगी। लेकिन, साथ में स्कूल छोड़ने वाले विद्यार्थियों की दर भी सचमुच में चिन्ताजनक थी। इतनी बड़ी संख्या में विद्यार्थी स्कूल क्यों छोड़ देते हैं? तब यह प्रचलित आम धारणा थी कि गरीबों के बच्चे जीविका कमाने के लिए काम करने, अर्थात बाल मजदूरी करने, जाते हैं। निश्चित ही बाल मजदूरी एक मुद्दा है। परन्तु, एक शोध दल द्वारा 1991 में किए गए अध्ययन ने दिखाया कि 'गाँव में, जहाँ बाल मजदूरी के लिए कोई संगठित अवसर नहीं होते, प्राथमिक स्तर पर अधिकांश पलायन बच्चों की स्कूल में अरुचि, पढ़ाई में उनकी असफलता,

और माता–पिता की निगरानी का अभाव, जैसे कारणों के संयुक्त हो जाने के फलस्वरूप होता है।'

इसलिए 'सीखने के आनन्द' का प्रयोजन, केवल कक्षा को जीवन्त बनाने, और विज्ञान सीखने को रोचक बनाने तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि यह बच्चों को स्कूल में बनाए रखने, तथा पलायन की रोकथाम करने का उपाय भी बन गया। सीखने के 'आनन्द' को इसलिए सिर्फ हाइड्रोजन गैस बना लेने के 'उल्लास' की तरह या किसी भूमिका को निभाने में आने वाले मज़े की तरह ही नहीं देखा गया। उसे एक ज़्यादा गहरी बात की तरह देखा गया–वह आनन्द और प्रफुल्लता जो किसी चीज़ को स्वयं 'खोज लेने' से और अपने आसपास के संसार को समझ लेने से अनुभव होती है। बच्चों की रुचि को बनाए रखने के लिए उनका विभिन्न प्रकार के कौशलों को हासिल करना बहुत महत्वपूर्ण है, जैसे कि पढ़ने, लिखने और गणित करने की क्षमता। यह स्पष्ट हो गया कि प्राथमिक शिक्षा को सर्वव्यापी बनाने के काम को स्कूल में होने वाली उपलब्धियों और सीखने के स्तरों से अलग नहीं किया जा सकता। अतः टीएनएसएफ की गतिविधियों में बच्चों पर केन्द्रित शिक्षण का दर्शन होने लगा।

सुधार को जड़ों तक ले जाना

> *विज्ञान में नए तथ्यों को प्राप्त करना उतनी महत्वपूर्ण बात नहीं है जितना उनके बारे में सोचने के नए तरीके खोज लेना है।*
>
> *– विलियम ब्रैग*

शिक्षा के क्षेत्र में टीएनएसएफ के शुरुआती प्रयास कम या बिना लागत के प्रयोगों के इस्तेमाल के प्रति शिक्षकों की रुचि जगाने तक सीमित थे। परन्तु 1990 के बाद से टीएनएसएफ शिक्षा की पहुँच का विस्तार करने, उसकी गुणवत्ता सुधारने, बच्चों पर केन्द्रित और गतिविधियों पर आधारित शिक्षण पद्धति का प्रचार करने, समुदाय को संगठित रूप से सक्रिय करने, आदि कार्यों में कारगर भूमिका निभा रहा है। शिक्षक, बच्चे तथा स्कूल प्रशासन इसमें महत्वपूर्ण भागीदार हैं। उतने ही महत्वपूर्ण हैं माता–पिता, समुदाय (नागरिक समाज), राज्य के शिक्षा अधिकारी, शिक्षक संघ, यूनिसेफ जैसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ तथा अन्य गैर–शासकीय संगठन (एनजीओ)।

इसी सन्दर्भ में, टीएनएसएफ इन विभिन्न भागीदारों के बीच संवाद और बहस के मंच के रूप में शिक्षा सम्मेलनों का आयोजन करता रहा है। सार्वजनिक रूप से ऐसी बहसों के द्वारा ही सार्थक और व्यावहारिक कार्ययोजना निकल सकती है। इसलिए कोई भी सुधार ऊपर से नहीं लादा जाना चाहिए, बल्कि वह ऐसी चर्चाओं और बहसों के आधार पर निर्मित होना चाहिए जिनमें शिक्षा से जुड़े हर वर्ग के लोगों की भागीदारी हो।

अभी मीलों जाना है

अपने श्रेष्ठ प्रयासों के बावजूद, टीएनएसएफ अभी भी शिक्षा से सम्बन्धित कई बातों को लेकर उलझन में है। प्रारम्भिक वर्षों से ही, टीएनएसएफ याददाश्त और रफ्तार पर जोर देने वाली परीक्षा व्यवस्था की आलोचना करता रहा है। परीक्षाएँ, जैसा कि आज हम उन्हें जानते हैं, ज्ञान प्राप्त करने में बच्चे की प्रगति का आकलन नहीं कर पातीं, और ना ही वे सीखने–सिखाने की पद्धति का मूल्यांकन कर पाती हैं। अनेक अन्य शैक्षणिक संगठनों की तरह, टीएनएसएफ भी मूल्यांकन पद्धति के सक्षम और व्यावहारिक तरीके प्रस्तुत करने में असफल रहा है।

टीएनएसएफ की अधिकांश गतिविधियाँ शिक्षण की प्रक्रिया से सम्बन्धित हैं: गतिविधि–आधारित, और बच्चों पर केन्द्रित सीखने–सिखाने की सामग्री के लिए उपकरण और औजारों का विकास। पर पाठ्यक्रम के विकास के लिए बहुत कम प्रयास हुए हैं। लगता है जैसे यह मान लिया गया है कि एक–सा पाठ्यक्रम पूरे देश और राज्य के लिए उपयुक्त होगा और इसमें सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि, तथा सांस्कृतिक विशेषताओं का कोई महत्व नहीं है। अतः, पाठ्यक्रम एक अन्य क्षेत्र है, विशेषकर सामाजिक–आर्थिक रूप से वंचित बच्चों के दृष्टिकोण से, जिसकी टीएनएसएफ ने कोई खास खोजबीन नहीं की है।

अधिकांश प्रगतिशील आन्दोलनों की तरह, टीएनएसएफ शिक्षा के, कम से कम प्राथमिक शिक्षा के, बच्चे की मातृभाषा में होने की वकालत करता रहा है। अंग्रेज़ी में सीखने–सिखाने पर ध्यान या तो दिया ही नहीं गया है या बहुत कम दिया गया है। लेकिन, हाल के वर्षों में विभिन्न दलित आन्दोलनकर्ता वंचित तबकों के बच्चों के लिए अंग्रेज़ी भाषा में उत्तम शिक्षण की माँग करते रहे हैं, खासकर इसलिए क्योंकि इससे सामाजिक उन्नति मिलती है। भाषा के इस मुद्दे पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता पर भी ध्यान दिया जाना अभी बाकी है।

टी.वी.वेंकटेश्वरन विज्ञान प्रसार, डिपार्टमेंट ऑफ साइन्स एण्ड टैक्नोलॉजी, नई दिल्ली में कार्यरत वैज्ञानिक हैं। उनकी रुचि के शोध क्षेत्र हैं : तमिलनाडु में विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के प्रयासों का इतिहास; और विभिन्न वैश्विक दृष्टिकोणों के निर्माण में, विशेष रूप से भारतीय सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में, विज्ञान के सम्प्रेषण द्वारा निभाई गई भूमिका का समीक्षात्मक अध्ययन। उनसे इस पते पर सम्पर्क किया जा सकता है : tvv@vigyanprasar.gov.in

फाउण्डेशन का अनुभव

विज्ञान का उत्सव: विज्ञान मेला

उमाशंकर पेरियोडी

मेले वाले दिन शायद ही कोई स्कूल को पहचान पाता। उस दिन दो हज़ार से ज़्यादा लोग इकट्ठे हो गए थे। स्कूल के मैदान को रंग-बिरंगे शामियाने से सजाया गया था। अनगिनत बच्चे उत्साहपूर्वक सजे-सँवरे घूम रहे थे। वहाँ का माहौल गाँव के जतरे (मेले) के माहौल से कम नहीं था। हर तरफ काम करते हुए लोगों की हलचल। कर्नाटक के शोरापुर ब्लॉक के सत्यमपीठ उच्चतर प्राथमिक स्कूल में यह विज्ञान मेले का दिन था।

पृष्ठभूमि

शोरापुर ब्लॉक के आसपास के कई स्कूलों में कराए जा रहे विज्ञान मेले, 'चाइल्ड फ्रेन्डली स्कूल' नामक कार्यक्रम का हिस्सा हैं, जो कर्नाटक सरकार और अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन का संयुक्त प्रयास है।

'चाइल्ड फ्रेन्डली स्कूल इनीशिएटिव (सीएफएसआई बच्चों के दोस्ताना स्कूलों की पहल),' शिक्षा के सभी साझेदारों के साथ मिल कर किया जानेवाला एक प्रयोग है। इसका उद्देश्य शिक्षा-व्यवस्था में क्षमता विकसित करके और जवाबदेही की भावना जगाकर, स्तरीय शिक्षा प्रदान करने की ऐसी प्रक्रिया को प्रदर्शित करना है जिसमें बच्चों के प्रति दोस्ताना भाव हो और जो लगातार चलाई जा सकती हो। यह कार्यक्रम उत्तर-पूर्व कर्नाटक के यादागीर शिक्षण ज़िले के शोरापुर ब्लॉक में 2004 में शुरू हुआ। यह शोरापुर ब्लॉक के सभी 333 सरकारी प्राथमिक स्कूलों में चल रहा है।

कार्यक्रम की गतिविधियों का सम्बन्ध कक्षा के भीतर उठनेवाले, स्कूल के और समुदाय के मुद्दों से होता है। स्कूल में होने वाली गतिविधियाँ पाठ्यक्रम लागू करने में, शिक्षक के काम में, सिखाने-सीखने की प्रक्रिया में और स्कूल और कक्षा के वातावरण को सुधारने में सहायक होती हैं। यह कार्यक्रम स्कूल और समुदाय के सकारात्मक सम्बन्ध को बढ़ावा देने की कोशिश करता है, ताकि गतिविधियों में समुदाय के जुड़ाव और उसकी कारगर भागीदारी को सुनिश्चित किया जा सके।

विज्ञान मेले की उत्पत्ति

बच्चों के दोस्ताना स्कूलों की पहल अब अपने क्रियान्वन के निर्णायक मोड़ पर है। समुदाय के साथ घनिष्टता से मिलकर काम करना तथा उन्हें स्कूल के प्रबन्धन में शामिल करना एक बड़ी चुनौती है। समुदाय के साथ परस्पर सक्रिय रिश्ते बनाने के दौरान हमने जाना है कि स्कूल और समुदाय के बीच सार्थक संवाद बहुत ही कम है।

गर्व से भरे एक पिता देखते हुए कि उनका बच्चा स्कूल में क्या सीखता है।

इसी सन्दर्भ में मीट्रिक मेले के आयोजन का विचार आया। सीएफएसआई की टीम ने जब मार्च 2008 में मीट्रिक मेले का आयोजन किया तो उनका अनुभव काफी सफल रहा। शोरापुर में मेले की कल्पना को साकार करने की प्रक्रिया ने यह दर्शाया कि किस तरह से इस प्रकार के आयोजन स्कूल-समुदाय सम्बन्धों से जुड़ी कई समस्यायों का निदान करने में मदद कर सकते हैं।

विज्ञान मेला इसी दिशा में एक अगला कदम है। टीम का विश्वास है कि यह भी मीट्रिक मेले के समान ही स्कूल और समुदाय के बीच की खाई को पाटने में एक शक्तिशाली उत्प्रेरक का काम कर सकता है।

सत्यमपीठ की उच्चतर प्राथमिक शाला में विज्ञान मेला

तीन दिसम्बर 2008 को आयोजित किया गया विज्ञान मेला शोरापुर के इतिहास में लगने वाला पहला विज्ञान मेला था। ढाई हज़ार से भी ज़्यादा बच्चों, शिक्षकों और समुदाय के लोगों ने इसमें भाग लिया। इसमें विज्ञान से सम्बन्धित लगभग सत्तर स्टॉल और प्रदर्शनियाँ थीं।

विज्ञान मेले के उद्देश्य

दूरबीन से संसार कैसा दिखता है?

- शिक्षकों और बच्चों में वैज्ञानिक सोच का विकास करना।
- रोज़मर्रा के जीवन में विज्ञान के प्रति विद्यार्थियों में जिज्ञासा और रुचि जगाना।
- बच्चों को उनके आसपास की चीज़ों तथा विज्ञान के विभिन्न पहलुओं का निरीक्षण करने, उन्हें समझने, उन पर प्रयोग करने और चर्चा करने का अवसर और सुविधा प्रदान करना।

• बच्चों को सरल, कम कीमत की सामग्री से मॉडलों और उपकरणों को निर्मित करने में मदद करना ताकि वे इनकी अवधारणाओं के पीछे का विज्ञान समझ सकें।

• यह महसूस करने में समुदाय की सहायता करना कि किस तरह रोज़मर्रा की घटनाओं के पीछे छिपी विभिन्न वैज्ञानिक अवधारणाओं को जानने से बच्चों को जीवन के प्रति वैज्ञानिक रवैया विकसित करने में मदद मिलती है।

• उत्सव के माहौल में बच्चों की प्रतिभाओं और योग्यताओं को प्रदर्शित करके स्कूली गतिविधियों में समुदाय की हिस्सेदारी को बढ़ाना।

• बच्चों को इसका अवसर प्रदान करना कि वे व्यक्तियों के साथ पारस्परिक व्यवहार सम्बन्धी अपने कौशलों को बढ़ा सकें।

मेले की तैयारी मुख्य कुंजी

मेले की योजना के सम्बन्ध में गम्भीर चर्चा

मेले की तैयारी सबसे अहम और काफी विस्तृत प्रक्रिया थी। इसकी शुरुआत मेले के बारे में विचार करने, मन में उसके स्वरूप के बारे में कल्पना करने, और उसके बाद विभिन्न प्रयोगों और प्रारूपों में से प्रत्येक पर काम करने से हुई। काफी सारा समय उन प्रयोगों को तैयार करने में लगा जो मेले के ख्याल से उचित लगे। लगभग तीन महीने तक शिक्षकों ने विद्यार्थियों के साथ कड़ी मेहनत करके ऐसे प्रयोगों की रचना की जो साधारण घटनाओं में छिपे विज्ञान को प्रभावशाली ढंग से दूसरे लोगों तक पहुँचा सकते थे। कल्पना किए गए प्रयोग को इस ढंग से हकीकत में बदलना कि वह विश्वास जगा सके, वाकई चुनौती भरा काम था। इसके लिए गहन चर्चाओं, प्रेक्षण, समीक्षा, पुनरावलोकन, फिर से बनाने और सुधार की ज़रूरत पड़ी, तब कहीं जाकर अंतिम उत्पाद निकल पाया। ऐसा खासकर इसलिए ज़रूरी था ताकि वह दूसरों के द्वारा आसानी से समझा जा सके।

शिक्षकों के साथ हुई प्रारम्भिक बैठकों के पहले दौर ने विज्ञान मेले को आयोजित करने में उनकी रुचि और उनके जोश को प्रगट किया। विज्ञान मेले में प्रदर्शित किए जाने वाले प्रयोगों की कल्पना करने, उनकी अवधारणाओं पर विचार करने और काम करने की ज़िम्मेदारी विज्ञान के शिक्षकों ने ले ली। शिक्षकों ने ऐसे 55 प्रयोगों, प्रदर्शनियों और गतिविधियों की सूची बनाई जिन्हें सस्ती सामग्री

विस्तृत योजना बनाते हुए शिक्षक तथा सीएफएसआई के मार्गदर्शक

से विकसित किया जा सकता था। इनका चार खण्डों में वर्गीकरण किया गया:

1) प्रयोगों को दर्शाना

2) प्रयोगों में हिस्सा लेना (खेलना, करना आदि)

3) प्रदर्शन (प्रदर्शनी)

4) विज्ञान में मज़ा (जादू, मायावी भ्रम आदि)

शिक्षकों ने विज्ञान मेले की अवधारणा पर एक नोट तैयार किया और दूसरों के साथ उस पर विचार-विमर्श किया। इससे उन्हें न केवल मेले के बारे अपने दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करने में मदद मिली, बल्कि इस आयोजन के कर्ता-धर्ता होने का अहसास भी हुआ। उन्होंने निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत प्रत्येक प्रयोग के लिए विस्तृत लिखित-विवरण तैयार किया : उद्देश्य, आवश्यक सामग्री, विधि/प्रक्रिया/गतिविधि, और निष्कर्ष।

एक ज्वालामुखी का प्रारूप बनाते हुए विद्यार्थी

ज़िम्मेदारियाँ बाँट ली गईं। प्रधान शिक्षक ने पूरी प्रक्रिया को समन्वित किया। प्रधान शिक्षक ने प्रत्येक गतिविधि के लिए ज़रूरी सामग्री को उपलब्ध कराया जिसमें से ज़्यादातर चीज़ें स्थानीय स्तर पर प्राप्त की गईं। उसके बाद प्रत्येक गतिविधि के लिए विद्यार्थियों को नियुक्त किया गया। उन्होंने शिक्षक के मार्गदर्शन में सामग्री को तैयार किया। इस प्रक्रिया में जो मुश्किलें सामने आईं, उनमें से एक यह थी कि कुछ प्रयोगों को विद्यार्थी आसानी से ठीक वैसा ही तैयार और साकार नहीं कर पा रहे थे, जैसी की कल्पना की गई थी। अत: कुछ पूर्वनियोजित गतिविधियों में सुधार किया गया और कुछ को पूरी तरह बदल दिया गया। उदाहरण के लिए मिट्टी के संरक्षण के लिए एक गतिविधि सोची गई थी जिसमें स्टील की दो बड़ी थालियों को मिट्टी से भरा गया था। एक थाली में ढीली मिट्टी भरी गई थी। दूसरी थाली में, यह दर्शाने के लिए कि पेड़-पौधे मिट्टी के क्षरण को रोकते हैं, छोटे-छोटे पौधे मिट्टी सहित रखे गए थे। इसके पीछे विचार यह था कि इन थालियों में पानी डालने पर पहली थाली की ढीली मिट्टी तो पानी के साथ बह जाएगी, लेकिन दूसरी थाली में पौधे की जड़ें मिट्टी को पकड़ कर रखेंगी। परन्तु समूह के लिए आश्चर्य की बात यह हुई कि दोनों थालियों की मिट्टी बिना किसी भेदभाव के बह गई। यह काफी चर्चा का

आयतन को समझने के लिए उसे सचमुच में नापना

विषय बना। समूह को इस धारणा को समझने में कुछ वक्त लगा कि इसमें जो बाँधने वाला कारक होता है, वह है मज़बूत जड़ें। उन्होंने दूसरी थाली की ढीली मिट्टी को हटा कर, उसमें मिट्टी की ऐसी मोटी ऊपरी परत रखी जिसमें घास अपनी जड़ों के साथ लगी हुई थी। इस तरह की प्रक्रियाओं ने विज्ञान मेले को और अधिक सार्थक बना दिया, क्योंकि उन्होंने तैयारी की अवस्था के दौरान भी सीखने का भरपूर मौका प्रदान किया।

गतिविधि–कार्ड का एक उदाहरण

गतिविधि का नाम: ध्वनि का संचार करने में वायु की भूमिका

उद्देश्य: यह दर्शाना कि ध्वनि के संचारण में वायु की आवश्यकता होती है।

आवश्यक सामग्री: काँच का बीकर, मोबाइल फोन

स्पष्टीकरण: इस गतिविधि में प्रतिभागियों को बजते हुए मोबाइल फोन को बिना बटन दबाए, यहाँ तक कि बिना उसे छुए, उसकी घण्टी को बन्द करने के लिए कहा जाएगा। इसे एक मिनट में किया जाना है। जब प्रतिभागी इसे करने में असमर्थ रहेंगे तो विद्यार्थी इसका प्रदर्शन करेंगे।

विधि: बजता हुआ मोबाइल टेबल पर रख दिया जाता है। विद्यार्थी एक ऐसा खाली बीकर या ग्लास लेते हैं जिसमें मोबाइल समा सके। वे मोबाइल को उसके अन्दर रख देते हैं। फिर विद्यार्थी अपने हाथों से बीकर या ग्लास के मुँह को दबाकर बन्द कर देते हैं। जब वे अपने हाथ हटाकर ग्लास या बीकर का मुँह खोल देते हैं, तो आवाज़ फिर से सुनाई देने लगती है। लेकिन जब वे ग्लास या बीकर के मुँह को कसकर बन्द किए रहते हैं, आवाज़ सुनाई नहीं देती।

निष्कर्ष: ध्वनि वायु के द्वारा संचारित होती है। अर्थात, वायु ध्वनि संचारण का माध्यम है।

निष्कर्ष

मेले की तैयारी में दूसरे स्कूलों के शिक्षकों की भागीदारी इस सामूहिक और सहयोगपूर्ण प्रयास का एक बहुत महत्वपूर्ण भाग था। स्कूल विकास और प्रबन्ध समिति (द स्कूल डेवलपमेंट एण्ड मैनेजमेंट कमेटी – एसडीएमसी) ने मेले की सफलता को सुनिश्चित करने में अहम भूमिका निभाई। बहुत सारी सामग्री और सामान पास के स्कूलों, हाई स्कूलों और कॉलेजों से जुटाए गए थे। टीम के द्वारा आत्मसात की गई एक महत्वपूर्ण सीख यह थी कि, तैयारी प्रक्रिया अपने–आप में बहुत ज्ञानवर्धक होती है, इसलिए आयोजन–प्रक्रिया को आयोजन के होने से भी ज़्यादा महत्वपूर्ण माना गया।

इस ग्रह पर हम कहाँ रहते हैं?, समुदाय के एक नेता को यह दिखाने में मशगूल एक बच्चा ।

बड़ों को एक बार फिर से बच्चे बनते देखना सचमुच ही अद्भुत दृश्य था। एक ताज़गी भरे उल्लास में डूबा हुआ पूरा स्कूल जैसे उस दिन गाँव की धुरी बन गया था। बच्चों ने आत्मविश्वास से भरे, स्वतंत्र व्यक्तित्व वाले और अपने काम के लिए पूरी तरह से ज़िम्मेदार व्यक्तियों की भूमिका ले ली थी। गर्व का एक अहसास न केवल बच्चों में, बल्कि उनके माता–पिता और शिक्षकों की नज़रों में भी दिखाई देता था, जिन्होंने अपने बच्चों को प्रशंसा करने योग्य व्यवहार, ज्ञान और कला को प्रदर्शित करते हुए देखा था।

इस विवरण को सत्यमपीठ उच्चतर प्राथमिक स्कूल की सहायक शिक्षिका आरती के निम्नलिखित शब्दों द्वारा समाप्त करना उचित होगा: 'विज्ञान मेले के लिए तैयारी की प्रक्रिया ने बच्चों को अनौपचारिक और मैत्रीपूर्ण वातावरण में प्रश्न पूछने के लिए प्रोत्साहित किया है। मैं निश्चित तौर पर कह सकती हूँ कि प्रश्न पूछने की यह संस्कृति बच्चों में जाँच–पड़ताल करने की प्रवृत्ति को बढ़ाएगी जो कक्षा के भीतर भी अभिव्यक्त होगी।'

उमाशंकर पेरियोडी, अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन के चाइल्ड फ्रेन्डली स्कूल इनीशिएटिव के प्रमुख हैं। उन्हें विकास के क्षेत्र में 25 वर्षों से भी अधिक का अनुभव है। उन्होंने राष्ट्रीय साक्षरता मिशन तथा कर्नाटक के बीआर हिल्स क्षेत्र में आदिवासी शिक्षा में व्यापक रूप से योगदान दिया है। वे कर्नाटक स्टेट ट्रेनर्स कलेक्टिव के अध्यक्ष भी हैं। सम्पर्क करने के लिए उनका पता है: periodi@azimpremjifoundation.org

शिक्षकों के लिए संसाधन सामग्री

कुछ सन्दर्भ किताबें जो विज्ञान को मज़ेदार बनाती हैं

1. द थर्ड बुक ऑफ एक्सपेरिमेंट्स, लियोनॉर्ड डी राइस, कैराउज़ल बुक्स
2. साइन्स वर्क्स, ओंटेरियो साइन्स सेन्टर, ओंटेरियो
3. ट्रॉइंग अराउण्ड विद साइन्स, बॉब फ्राइडहॉफर, फ्रेंकलिन वॉट्स, न्यूयॉर्क
4. द साइन्स एक्सप्लोरर, पी मर्फ़ी, ई क्लेग्स, एल शोर, एन आउल बुक
5. 700 साइन्स एक्सपेरिमेंट्स फ़ॉर ऐवरीवन, यूनेस्को द्वारा संकलित, डबलडे
6. 100 अमेज़िंग साइन्स फ़ेयर प्रोजेक्ट्स, ग्लेन वेकोनी, गुडविल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
7. 365 सिंपल साइन्स ऐक्सपेरिमेंट्स विद ऐवरीडे मैटीरियल्स, रिचर्ड चर्चिल, स्टर्लिंग पब्लिशर्स
8. द बुक ऑफ ऐक्सपेरिमेंट्स, लियोनॉर्ड डी राइस, कैराउज़ल
9. ज्वॉय ऑफ लर्निंग (स्टैंडर्ड 3 टू 5), सेन्टर फ़ॉर ऐन्वायर्नमेंटल ऐजुकेशन, अहमदाबाद, भारत
10. ऐक्सपेरिमेंट्स फ़ॉर यू, जॉन टॉलीफ़ील्ड, इवान्स ब्रदर्स, लन्दन
11. हाऊ टूटर्न वॉटर अपसाइड-डाउन, रॉल्फ़ लेविन्सन, बीवर बुक्स, लन्दन
12. ऐक्सपेरिमेंट्स विद ऐवरीडे ऑबजेक्ट्स, केविन गोल्डस्टेन-जैक्सन, ग्रैनेडा पब्लिशिंग, न्यू यॉर्क
13. सिंपल साइन्स ऐक्सपेरिमेंट्स, बैटस्टॉर्ड, हैंस जर्गन प्रेस
14. लेट्स डिस्कवर साइन्स, डेविड हॉर्सबर्ग, ऑक्सफर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस
15. चाय की प्याली में पहेली, पार्थोघोष और दीपांदर होम (हिन्दी), नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली 110016
16. यूनेस्को सोर्स बुक फ़ॉर साइन्स इन द प्राइमरी स्कूल, हार्लेन और एल्सटजीस्ट, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली 110016
17. सोप बबल्स, सी वी ब्वॉयेज़ (हिन्दी/अंग्रेज़ी), विज्ञान प्रसार, सी-24, क़ुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110016
18. द कैमिकल हिस्ट्री ऑफ अ कैंडल, माइकल फ़ैराडे (हिन्दी/अंग्रेज़ी), विज्ञान प्रसार, नई दिल्ली info@vigyanprasar.gov.in
19. साइन्स इन ऐवरीडे लाइफ, जे. बी. एस. हाल्डेन, विज्ञान प्रसार, नई दिल्ली info@vigyanprasar.gov.in
20. वीएसओ साइन्स टीचर्स हैंडबुक, ऐंडी बायर्स, ऐन चाइल्ड्स, क्रिस लेन (हिन्दी) एकलव्य, भोपाल pitarae@klavya.in
21. ऐन्वायर्नन्मेंट एंड सेल्फ़ रिलायंस, योना फ्रीडमैन, ऐडा शौर (हिन्दी/अंग्रेज़ी), विज्ञान प्रसार, नई दिल्ली
22. ऐनर्जी एंड सेल्फ़ रिलायंस, योना फ्रीडमैन (हिन्दी/अंग्रेज़ी), विज्ञान प्रसार, नई दिल्ली info@vigyanprasar.gov.in
23. द स्टोरी ऑफ फ़िजिक्स, टी पम्मानाभन (हिन्दी/अंग्रेज़ी), विज्ञान प्रसार, नई दिल्ली info@vigyanprasar.gov.in
24. ऑन द वेरियस फ़ोर्सेज़ ऑफ नेचर, माइकल फ़ैराडे, विज्ञान प्रसार, नई दिल्ली info@vigyanprasar.gov.in
25. द इन्सेक्ट वर्ल्ड ऑफ जे हेनरी फैबर, विज्ञान प्रसार, नई दिल्ली info@vigyanprasar.gov.in
26. द ऑटोबायोग्राफ़ी ऑफ चार्ल्स डार्विन, विज्ञान प्रसार, नई दिल्ली info@vigyanprasar.gov.in
27. द बाइसिकल स्टोरी, विजय गुप्ता, विज्ञान प्रसार, नई दिल्ली info@vigyanprasar.gov.in
28. आकाश दर्शन एटलस, गोपाल रामचन्द्र परांजपे, एनसीईआरटी, श्रीअरविन्दो मार्ग, नई दिल्ली 110016
29. प्रिपरेशन फ़ॉर अंडरस्टैंडिग, कीथ वॉरेन, चित्रांकन जूलिया वॉरेन द्वारा, यूनेस्को
30. रिसोनेंस जर्नल ऑफ साइन्स ऐजुकेशन, इंडियन ऐकेडमी ऑफ साइंसेज़

सौजन्य- अहा! एक्टीविटीज़, एकलव्य, भोपाल

प्राथमिक और माध्यमिक स्कूल के विज्ञान के लिए उपयुक्त वैबसाइट्स और ई–संसाधन

1. लेट्स डिस्कवर साइन्स भाग 1, लेखक–डेविड हॉर्सबर्ग (छपी किताब उपलब्ध नहीं, लेकिन इन्टरनेट. पर इस लिंक http://vidyaonline.org/arvindgupta/david1.pdf से पीडीएफ फाइल की तरह डाउनलोड की जा सकती है)

2. लेट्स डिस्कवर साइन्स भाग 2, लेखक– डेविड हॉर्सबर्ग (छपी किताब उपलब्ध नहीं लेकिन इन्टरनेट. पर इस लिंक http://vidyaonline.org/arvindgupta/david2.pdf से पीडीएफ फाइल की तरह डाउनलोड की जा सकती है)

3. लेट्स डिस्कवर साइन्स भाग 3, लेखक– डेविड हॉर्सबर्ग (छपी किताब उपलब्ध नहीं लेकिन इन्टरनेट. पर इस लिंक http://vidyaonline.org/arvindgupta/david3.pdf से पीडीएफ फाइल की तरह डाउनलोड की जा सकती है)

4. लेट्स डिस्कवर साइन्स भाग 4, लेखक– डेविड हॉर्सबर्ग (छपी किताब उपलब्ध नहीं लेकिन इन्टरनेट. पर इस लिंक http://vidyaonline.org/arvindgupta/david4.pdf से पीडीएफ फाइल की तरह डाउनलोड की जा सकती है)

5. लेट्स डिस्कवर साइन्स भाग 5, लेखक– डेविड हॉर्सबर्ग (छपी किताब उपलब्ध नहीं लेकिन इन्टरनेट. पर इस लिंक http://vidyaonline.org/arvindgupta/david5.pdf से पीडीएफ फाइल की तरह डाउनलोड की जा सकती है)

6. लर्निंग अबाउट लिविंग भाग 1, लेखक– डेविड हॉर्सबर्ग (छपी किताब उपलब्ध नहीं लेकिन इन्टरनेट. पर इस लिंक http://vidyaonline.org/arvindgupta/D6.pdf से पीडीएफ फाइल की तरह डाउनलोड की जा सकती है)

7. लर्निंग अबाउट लिविंग भाग 3, लेखक– डेविड हॉर्सबर्ग (छपी किताब उपलब्ध नहीं लेकिन इन्टरनेट. पर इस लिंक http://vidyaonline.org/arvindgupta/D7.pdf से पीडीएफ फाइल की तरह डाउनलोड की जा सकती है)

8. थिंकिंग एण्ड डूइंग, लेखक–डेविड हॉर्सबर्ग (छपी किताब उपलब्ध नहीं लेकिन इन्टरनेट. पर इस लिंक http://vidyaonline.org/arvindgupta/thinkanddo.pdf से पीडीएफ फाइल की तरह डाउनलोड की जा सकती है)

9. स्मॉल साइन्स – कक्षा 1 से 5 के लिए (अभ्यास–पुस्तकों और शिक्षकों की पुस्तकों के साथ) होमी भाभा सेन्टर फॉर साइन्स एजुकेशन, टीआईएफआर, मुम्बई, http://hbcse.tifr.res.in/smallscience

10. http://www.arvindguptatoys.com लिंक पर विज्ञान के सीखने को जीवन्त बनानेवाली किताबों की विशाल सूची है, जिनका अरविन्द गुप्ता ने मूल्यांकन किया है। इनमें से कई को मुफ्त में डाउनलोड किया जा सकता है।

11. लो कॉस्ट इक्विपमेंट फॉर साइन्स एण्ड टेक्नोलॉजी एजूकेशन, भाग–1 – यूनेस्को द्वारा संकलित https://unesdoc.unesco.org/images/0010/001023/102321 eb.pdf पर किफायती सामानों के इस्तेमाल से स्कूलों में इस्तेमाल होने वाले विज्ञान उपकरणों को बनाने के बारे में जानकारी उपलब्ध है।

12. लो कॉस्ट इक्विपमेंट फॉर साइन्स एण्ड टेक्नोलॉजी एजूकेशन, भाग–2 – यूनेस्को द्वारा संकलित https://unesdoc.unesco.org/images/0007/000728/072808 eb.pdf पर किफायती सामानों के इस्तेमाल से स्कूलों में इस्तेमाल होने वाले विज्ञान उपकरणों के बारे में जानकारी उपलब्ध है।

13. http://www.exploratorium.edu इस रोचक वैबसाइट पर विज्ञान से जुड़ी ढेरों सामग्री और गतिविधियाँ हैं जिनमें इस क्षेत्र में हो रहे विकास की ताजा जानकारियाँ जोड़ी जाती हैं।

14. http://www.johnkyrk.com इस वैबसाइट पर कोशिकाओं की संरचना, कोशिका विज्ञान, और डीएनए के एनिमेशन (जीवन्त चित्र) की लिंक्स मौजूद हैं।

15. http://www.bbc.co.uk/schools/scienceclips/ages/8_9/circuits_conductors_fs.shtml इस लिंक पर चालकों से जुड़े कई पाठ उपलब्ध हैं जिसमें देखने वाला भी भाग ले सकता है।

16. http://www.primaryschool.com.au/scienceresults.php?kla=Science%20and%20Technology&unit=Switched%20On ऊपर वाली लिंक की ही तरह, इस वैबसाइट पर भी ऐसे कई पाठों की लिंक्स हैं जिनमें देखनेवाला भाग ले सकता है।

17. http://www.juliantrubin.com/bigten/pathdiscovery html लिंक पर मशहूर प्रयोगों और आविष्कारों को एनीमेशन के द्वारा फिर से दोहराया जा सकता है।

18. http://www.freeindia.org/biographies/ great scientists लिंक पर कई भारतीय वैज्ञानिकों की जीवनियाँ उपलब्ध हैं।

19. http://www-gap.dcs.stand.ac.uk/-history/indexes/indians.html लिंक पर प्राचीन भारत के गणितज्ञों के बारे में जानकारी दी गई है।

20. http://www.calcuttaweb.com/people/snbose.shtml लिंक पर कुछ और भारतीय वैज्ञानिकों के जीवन परिचय उपलब्ध हैं।

21. http://www.shodor.org/succeed/curriculum/FOR/observation.html लिंक पर किसी व्यक्ति की निरीक्षण क्षमता की जाँच के लिए संवादात्मक पुस्तिका दी गई है।

22. http://www.science-class.net/Powerpoints/NOS_TEST_Review.ppt लिंक पर एक पावरप्वाइंट प्रस्तुति है जो विज्ञान की प्रकृति के बारे में बताती है।

23. http://www.science-class.net/Powerpoints/NOS_TEST_ReviewGT.ppt लिंक पर भी एक ऐसी ही पावरप्वाइंट प्रस्तुति है।

24. http://www.science-class.net/Teachers_Lessons.htm पर माध्यमिक स्कूल स्तर के विज्ञान के पाठों से सम्बन्धित कई अहम लिंक्स हैं।

25. https://www.science-class.net/T-KS/taks.htm लिंक पर कई पावरप्वाइंट्स के लिंक्स हैं जो माध्यमिक स्कूलों के लिए कई अवधारणाओं पर विस्तृत जानकारी देते हैं।

26. http://teachers.net/lesson/posts/1228.html (http://www.curriki.org/xwiki/bin/view/Coll_rmlucas/LabClassificationofShoes?bc=;Coll_rmlucas.10Classification से जुड़ी हुई है) इस पर एक गतिविधि दी गई है जिसमें बच्चों को जूतों का वर्गीकरण करना है, ताकि वे वर्गीकरण के महत्व को समझें (वर्गीकरण, विज्ञान के सभी क्षेत्रों में उपयोगी है, खासकर रसायन विज्ञान और जीवविज्ञान में)

27. http://www.encyclomedia.com/video-arctic_food_chain.html - वैबसाइट पर आर्कटिक खाद्य–शृंखला पर एक वीडियो उपलब्ध है।

28. http://www.kbears.com/ocean/octopus/index.html लिंक पर ऑक्टोपस के बारे में विस्तृत जानकारी दी गई है।

29. http://magma.nationalgeographic.com/ngexplorer/0309/articles/mainarticle.html लिंक पर जल के अन्दर रहने वाले जीवों पर काफी विस्तृत जानकारी दी गई है।

30. http://www.seaworld.org/animal-info वैबसाइट पर पशुओं के बारे में कई लिंक और जानकारियाँ हैं।

31. http://www.seaworld.org/fun-zone/coloring-books/pdf/emp-penguin.pdf पर बच्चों के लिए एक वेबपेज है जहाँ वे खेलते–खेलते ही पशुओं के बारे में काफी कुछ सीख सकते हैं।

32. http://kids.nationalgeographic.com/animals/CreatureFeature/ एक बहुत बढ़िया वैबसाइट है यहाँ आप किसी जानवर पर क्लिक करके उसके बारे में काफी कुछ जान सकते हैं। इसमें मोर पर क्लिक करने से जानवरों से जुड़े तथ्य, वीडियो, और जहाँ ये पाए जाते हैं उन क्षेत्रों के नक्शे भी सुलभ हो जाते हैं।

33. रिसोर्सेस फॉर टीचिंग मिडिल स्कूल साइन्स (1998) – http://books.nap.eduedu/catalog.php?record_id=5774 (ISBN 0309057817) द नेशनल एकेडमी ऑफ साइंसेज, नेशनल एकेडमी ऑफ इंजीनियरिंग, इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिसिन, और द स्मिथसोनियन इंस्टीट्यूटशन का नेशनल साइन्स रिसोर्सेस सेन्टर।

34. रिसोर्सेस फॉर टीचिंग ऐलिमेंट्री स्कूल साइन्स (1996) – http://books.nap.eduedu/catalog.php?record_id=4966 (ISBN 0309052939) द नेशनल एकेडमी ऑफ साइंसेज, और द स्मिथसोनियन इंस्टीट्यूटशन का नेशनल साइन्स रिसोर्सेस सेन्टर।

35. http://www.exploratorium.edu/explore/handson.html लिंक पर इस आयुवर्ग और इससे कम आयुवर्ग के बच्चों के लिए कई आनलाइन तथा खुद करके देखनेवाली गतिविधियाँ हैं।

36. http://fi.edu/tfi/activity/act-summ.html लिंक पर इस आयुवर्ग और इससे कम आयुवर्ग के बच्चों के लिए कई आनलाइन तथा खुद करके देखनेवाली गतिविधियाँ हैं।

37. http://www.bbc.co.uk/schools/scienceclips/ages/10_11/science_10_11.shtml लिंक पर वर्णमाला और विषय के क्रम से गतिविधियों की सूची दी गई है।

38. http://www.bbc.co.uk/schools/scienceclips/ages/9_10/changing_sounds.shtml लिंक पर कक्षा–5 और उससे कम में पढ़ने वाले बच्चों के लिए छाँटने और सारणी बनाने के आसान अभ्यास हैं।

39. http://www.bbc.co.uk/schools/scienceclips/ages/10_11/forces_action.shtml लिंक पर कक्षा–6 और कक्षा–7 के बच्चों के लिए सारणी बनाने और अभिप्राय निकालने के थोड़े अधिक जटिल अभ्यास हैं।

40. http://www.bbc.co.uk/schools/teachers/ks4/bitesize_chemistry.shtml लिंक पर कक्षा–8 और कक्षा–9 में पढ़ने वाले बच्चों के लिए रसायनशास्त्र की मूल्यांकन की सुविधा वाली वर्कशीट्स (अभ्यास–पत्र) हैं।

41. http://www.bbc.co.uk/schools/gcsebitesize/chemistry/classifyingmaterials/ लिंक पर कक्षा– 8 या उससे ऊपर के बच्चों के लिए पदार्थ के वर्गीकरण, परमाणु संरचना, बंध संरचना और फॉर्म्यूला/समीकरण की समझ का मूल्यांकन करने के लिए अभ्यास दिए गए हैं।

42. http://www.bbc.co.uk/schools/gcsebitesize/physics/electricity/ लिंक पर कक्षा–8 या उससे ज़्यादा में पढ़ने वाले बच्चों के लिए कुछ सोचने वाले सवाल हैं।

43. http://www.bbc.co.uk/schools/gcsebitesize/physics/forces/ लिंक पर कक्षा–7, कक्षा–8 या उससे ऊपर के बच्चों के लिए बढ़िया सवाल हैं।

44. http://cse.edc.org/products/onlinecurr/catalog.asp लिंक पर माध्यमिक और प्राथमिक स्कूलों के विज्ञान के लिए वेब आधारित संसाधनों का ऑनलाइन कैटेलॉग (नामसूची) है।

45. http://www.explorelearning.com/index.cfm?method=cResource.dspViewResourceID=491 लिंक पर प्रकाश–विद्युत प्रभाव का एक सुन्दर एनिमेशन (सजीवन चित्र) है, जिसे कक्षा–8 के बच्चों को दिखाया जा सकता है।

46. http://www.explorelearning.com/ वैबसाइट पर इस आयुवर्ग के बच्चों को विज्ञान सीखने में मदद करने के लिए कई कृत्रिम आभासी संरचनाएँ हैं जिनमें भाग लिया जा सकता है।

47. http://cse.edu.org/products/onlinecurr/WBMISearchResults.asp लिंक पर इस आयुवर्ग या इससे थोड़े बड़े बच्चों के लिए विषयों और उन पर उपलब्ध मॉड्यूलों (पुस्तिकाओं) की सम्पूर्ण सूची है।

48. http://www.blupete.com/Literature/Biographies/Science/Scients.htm लिंक पर कई वैज्ञानिकों की जीवनियों से सम्बन्धित लिंक्स हैं।

49. http://www.juliantrubin.com/bigten/pathdiscovey.html वैबसाइट पर खोजों और आविष्कारों के लिए लिंक्स का संग्रह है।

50. http://www.fordham.edu/Halsall/science/sciencebook.html लिंक विज्ञान के इतिहास के बारे में जानकारी के लिए इन्टरनेट स्त्रोतपुस्तक है।

51. http://www.middleschoolscience.com/tunefork.htm लिंक पर कक्षा–7 और कक्षा–8 के बच्चों के लिए एक अच्छी गतिविधि है जिससे ट्यूनिंग फ़ॉर्क (संस्वरण द्विभुज) और ध्वनि कम्पनों के बारे में सीखा जा सकता है।

52. http://www.pbs.org/benfranklin/exp-shocking.html लिंक पर बेंजामिन फ्रेंकलिन के पतंग प्रयोग की घटना को आभासी ढंग से जीवन्त बनाती एक संवादात्मक गतिविधि है।

53. http://www.pbs.org/teachers/sciencetech/ लिंक पर माध्यमिक और प्राथमिक स्कूलों में विज्ञान–शिक्षण के लिए कक्षा तथा विषय के अनुसार पाठ–योजनाएँ है।

54. http://www.learner.org/resources/series90.html लिंक पर विज्ञान सिखाने के विज्ञान पर कई वीडियो हैं।

55. http://www.outlookindia.com/script11w2.asp?act=signurl/full.asp?fodname=20050328*fname=sciencesid=1 लिंक पर नोबल पुरस्कार पाने वाली खोजों को बच्चों के लिए रुचिकर बनाकर प्रस्तुत किया गया है।

56. http://www.teachernet.gov.uk/teachingandlearning/subjects/science/science_teaching_resources/ लिंक पर प्राथमिक विज्ञान के ई–शिक्षण और सीखने के कई स्त्रोतों की लिंक्स मौजूद हैं।

57. http://www.firstscience.com/home/ एक अग्रणी लोकप्रिय ऑनलाइन विज्ञान पत्रिका है। इस पर महत्वपूर्ण नई खोजों पर लेख, विज्ञान की ताजा खबरें, वीडियो, ब्लॉग, कविताएँ, तथ्य, खेल तथा विज्ञान से जुड़ी और भी बहुत–सी जानकारियाँ मौजूद हैं।

58. चकमक : बच्चों के लिए एक मासिक विज्ञान पत्रिका है।
http://www.eklavya.in/go/index.php?option=com_contenttask=categorysectionid=13id=57ltemid=84

59. शैक्षणिक सन्दर्भ : शिक्षा में रुचि रखने वालों और शिक्षकों के लिए एक व्दैमासिक हिन्दी पत्रिका।
http://www.eklavya.in/go/index.php?option=com_contenttask=categorysectionid=13id=51ltemid=72 60.

60. स्त्रोत : विज्ञान और तकनालॉजी के विषयों पर आधारित फीचरसेवा। माह भर में प्रकाशित लेखों तथा अन्य सामग्री को संयोजित करके इसी नाम से एक पत्रिका के रूप में भी प्रकाशित किया जाता है।
http://www.eklavya.in/go/index.php?option=com_contenttask=categorysectionid=13id=56ltemid=81

61. http://www.gobartimes.org/20090315/20090315.asp एक द्विमासिक बच्चों की पत्रिका है, जिसमें पर्यावरण और विकास से जुड़ी खबरों को चित्रकथाओं, कार्टून, सवाल–जवाब, निबन्ध प्रतियोगिताओं और संवादात्मक पन्नों के जरिए खास जगह दी जाती है। ये कक्षाओं में शिक्षकों के लिए भी उपयोगी है।

62. http://www.edugreen.teri.res.in/index.asp बच्चों के लिए एक वैबसाइट है जो पर्यावरण के बारे में रोचक ढंग से सिखाती है।

63. http://www.nuffieldcurriculumcentre.org/go/Default.html इस वैबसाइट पर कई ऐसी विज्ञान परियोजनाओं के लिंक्स मौजूद हैं जो रोचक ढंग से विज्ञान शिक्षण का काम करती हैं।

64. http://www.exploratorium.edu/ifi/resources/workshops/teachingforconcept.html वाटसन, बूस और रिचर्ड कोपनीसेक के फ़ाइ डेल्टा काप्पन में मई 1990 में छपे शोधपत्र 'टीचिंग फॉर कन्सैप्चुअल चेन्ज: कन्फ़्रन्टिंग चिल्ड्रन्स ऐक्सपीरिएन्स' की लिंक है।

विज्ञान की गतिविधियों और खेलों वाली कुछ किताबें

कक्षा	विषय
	लिटिल ट्वॉयज़, अरविन्द गुप्ता, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली
V	पाँचवी ट्रीज़ (पेड़) पेज 33 नीमरेत हांडा की किताब माय बुक ऑफ ट्रीज़ भी देखें, एरिया (क्षेत्र) पेज 37, वॉल्यूम (आयतन) पेज 37
VI	एरिया (क्षेत्र) पेज 37, वॉल्यूम (आयतन) पेज 37, कलर (रंग) पेज 33, प्रेशर (दबाव) पेज 9, साइफन एक्शन पेज 11, पंप पेज 13, विंड एनर्जी (पवन ऊर्जा) पेज 19, साउंड/वाइब्रेशन (ध्वनि/कँपन) पेज 15
VII	प्रेशर (दबाव) पेज 9, साइफन एक्शन पेज 11, पंप पेज 13, विंड एनर्जी (पवन ऊर्जा) पेज 19, साउंड/वाइब्रेशन (ध्वनि/कँपन) पेज 15, स्टैटिक इलैक्ट्रिसिटी (स्थिर विद्युत) पेज 47, फ़्रिक्शन एण्ड ग्रेविटी (घर्षण एवं गुरुत्वाकर्षण) पेज 31, कन्वर्ज़न ऑफ पोटेंशियल एनर्जी इनटू कायनेटिक एनर्जी (स्थितिज ऊर्जा का गतिज ऊर्जा में परिवर्तन) पेज 25, हाऊ ऐंजिन्स वर्क (इंजन कैसे काम करते हैं) पेज 21, गियर व्हील मोशन (गियर चक्रों की गति), सर्कुलर एण्ड लीनियर मोशन (वृत्तीय और रेखिक गति)पेज 17, आर्कमिडीज़ प्रिंसीपल (आर्कमिडीज़ का सिद्धान्त) पेज 53
VIII	कन्वर्ज़न ऑफ पोटेंशियल एनर्जी इनटू कायनेटिक एनर्जी (स्थितज ऊर्जा का गतिज ऊर्जा में परिवर्तन) पेज 25, हाऊ ऐंजिन्स वर्क (इंजन कैसे काम करते हैं) पेज 21, गियर व्हील मोशन (गियर चक्रों की गति), सर्कुलर एण्ड लीनियर मोशन (वृत्तीय और रेखिक गति) पेज 17, आर्कमिडीज़ प्रिंसीपल (आर्कमिडीज़ का सिद्धान्त) पेज 53, टु अंडरस्टैंड फ़्लाइट (उड़ान को समझना) पेज 41
	टैन लिटिल फ़िंगर्स, अरविन्द गुप्ता, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली
V	वॉल्यूम (आयतन) पेज 22, वेट (वज़न) पेज 13, शेप (आकृति) पेज 11, साइज़ (आकार) पेज 12
VI	वॉल्यूम (आयतन) पेज 22, पुलीज़ (घिरनियाँ) पेज 25
VII	पुलीज़ (घिरनियाँ) पेज 25
	ट्वॉय बैग, अरविन्द गुप्ता, एकलव्य,भोपाल
VII	सैंट्रीपीटल फ़ोर्स (अभिकेंद्री बल) पेज 13
	प्रीडेटर, द फ़ॉरेस्ट फूड चेन गेम, एंपरसेंड प्रेस, वॉशिंगटन
V	फूड चेन (खाद्य शृंखला – इसे भारतीय जानवरों और वनस्पति के अनुसार थोड़ा बदलना होगा)
	साइन्स फ़ेयर प्रोजेक्ट्स एनर्जी, बॉब बोनेट और डैन कीन, स्कॉलेस्टिक
V और VI	एनर्जी (ऊर्जा)

कक्षा	विषय
	अंडरस्टैंडिग साइन्स –लेविल 2, पीटर क्लटरबक; स्कॉलेस्टिक
V	प्लांट्स (पौधे), एनीमल्स (जानवर), फ़ूड चेन (खाद्य–शृंखला), सीड्स (बीज), वर्टीब्रेट्स/इनवर्टीब्रेट्स (मेरूदंडीय/गैरमेरूदंडीय), हैबीटाट (पर्यावास)
VI	गैसेज़, लिक्विड्स (द्रव्य), स्टेट्स ऑफ मैटर (पदार्थ की अवस्थायें), फ़ोर्स एण्ड मोशन (बल एवं गति)
VII	साउंड (ध्वनि), लाइट (प्रकाश), एनर्जी (ऊर्जा), डाइजेस्टिव सिस्टम (पाचन तंत्र), रेस्पिरेटरी सिस्टम (श्वसन तंत्र)
	सुपर साइन्स क्रॉस वर्ड्स, कैथरीन बरकेट, स्कॉलेस्टिक
V	प्लांट्स (पौधे), सीड्स (बीज), वर्टीब्रेट्स (मेरूदंडीय)
	पेंगुईन्स स्विम बट डोंट गेट वेट, मैल्विन एण्ड गिल्डा बर्गर, स्कॉलेस्टिक
V	एनीमल्स (जानवर)
	द यूज़बोर्न इन्टरनेट. लिंक्ड लाइब्रेरी ऑफ साइंसेज़, अर्थ एण्ड स्पेस, हॉवेल, रॉजर्स एण्ड हैंडरसन, स्कॉलेस्टिक
VI	अर्थ साइन्स (भू विज्ञान)
	द यूज़बोर्न बिग बुक ऑफ ऐक्सपेरिमेंट्स, स्कॉलेस्टिक
V	प्लांट्स एण्ड एनीमल्स (पौधे और जानवर)
VI	स्टेट्स ऑफ मैटर (पदार्थ की अवस्थायें), गैसें, एक्सपेंशन एण्ड कॉंट्रैक्शन (प्रसार और संकुचन), लाइट एण्ड साउंड (प्रकाश एवं ध्वनि), प्लांट्स एण्ड एनीमल्स (पौधे और जानवर), फोर्सेज़ एण्ड मोशन (बल एवं गति)
VII	एसिड एण्ड एल्कलीज़ (अम्ल और क्षार), एवरीडे कैमिकल्स (रोज़मर्रा के रसायन), लाइट एण्ड साउंड (प्रकाश एवं ध्वनि), इलैक्ट्रिसिटी एण्ड मैग्निटिज़्म (विद्युत और चुंबकत्व), फोर्सेज़ एण्ड मोशन (बल एवं गति)
VIII	इलैक्ट्रिसिटी एण्ड मैग्निटिज़्म (विद्युत और चुंबकत्व)
	माई बुक ऑफ ट्रीज़, नीमरेत हांडा, स्कॉलेस्टिक
V	ट्रीज़ (पेड़)
	स्कॉलेस्टिक ऐनसाइक्लोपीडिया ऑफ एनीमल्स, लॉरेंस प्रिंगल
V और VI	एनीमल्स (जानवर)
	द इलस्ट्रेटैड ऐनसाइक्लोपीडिया ऑफ साइन्स, पेंटागन प्रेस
VI और VII	चेंजेस (परिवर्तन), ऐवरीडे मैटीरियल्स (रोज़मर्रा की सामग्री), अर्थ साइन्स (पृथ्वी विज्ञान)
	बालवैज्ञानिक, एकलव्य, भोपाल
VI, VII और VIII	बाल वैज्ञानिक: होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम की पाठ्यपुस्तक जो पाठ्यपुस्तक से ज्यादा अभ्यास पुस्तिका है। माध्यमिक कक्षाओं के स्तर की विभिन्न विज्ञान अवधारणों से सम्बन्धित प्रयोगों का खजाना। प्रकाशक: एकलव्य, भोपाल।
	किंगफ़िशर यंग नॉलेज मैटीरियल्स, लिक्विड्स, सॉलिड्स, गैसेज़; क्लाइव गिफर्ड
VI	ऐवरीडे मटैरियल्स (रोज़मर्रा की सामग्री), चेंजेस (परिवर्तन)
	100 थिंग्स यू शुड नो अबाउट साइन्स, स्टीव पार्कर, माइल्स कैली पब्लिशिंग
VI	फोर्सेज़ एण्ड मोशन (बल एवं गति), लाइट एण्ड साउण्ड (प्रकाश एवं ध्वनि), ऐवरीडे मटैरियल्स (रोज़मर्रा की सामग्री)
	शेयरिंग नेचर विद चिल्ड्रन, जोसेफ भरत कॉर्नेल
V और VI	फूड चेन (खाद्य–शृंखला), प्लांट्स (पौधे), एनीमल्स (जानवर), बर्ड्स (पक्षी)
	सिंपल नेचर एक्पेरीमेंट्स विद ऐवरीडे मैटीरियल्स, एंथनी डी फ़्रैडरिक्स
V और VI	प्लांट्स (पौधे), एनीमल्स (जानवर), बर्ड्स (पक्षी), इंसेक्ट्स (कीड़े)

विज्ञान शिक्षण में सक्रिय कुछ महत्वपूर्ण संगठन

क्रमांक	संगठन का नाम	संपर्क
1.	अगस्त्य इन्टरनेशनल फाउण्डेशन	पता : कटारिया हाउस, 219 कामराज रोड, बैंगलोर–560042 फोन : 080–25548913–16 वैबसाइट : www.agastya.org ई–मेल : Maagastya@vsnl.com
2.	अवेही–एबेकस प्रोजेक्ट	पता : तीसरी मंजिल, के. के. मार्ग म्यूनसिपल स्कूल, सात रास्ता, महालक्ष्मी, मुंबई 400011 फोन : (022) 23075231, (022) 2305 2790 वैबसाइट : http://avehiabacus.org ई–मेल : avcab@vsnl.com
3.	बैंगलोर एसोसिएशन फॉर साइन्स एज्यूकेशन (बेस)	पता : जवाहरलाल नेहरू प्लेनेटेरियम, श्री टी. चौदय्या रोड, हाई ग्राउंड्स, बैंगलोर 560001 फोन : 080–22266084, 22203234 वैबसाइट : http://www.taralaya.org ई–मेल : taralaya@vsnl.com
4.	भारत ज्ञान विज्ञान समिति/ इण्डियन ऑर्गनाइजेशन फॉर लर्निंग एण्ड साइन्स	पता : वाई डब्ल्यू ए हॉस्टल नम्बर–2 के तल में, एवेन्यू–21, जी–ब्लॉक, साकेत, नई दिल्ली–110 017, फोन : 011–2656 9943 वैबसाइट : http://www.bgvs.org ई–मेल : bgvs_delhiyahoo.co.in, bgvsdelhi@gmail.com
5.	सेन्टर फॉर ऐन्वायर्नमेंट ऐजुकेशन	पता : नेहरू फाउण्डेशन फॉर डेवलपमेंट, थटलेज टेकरा, अहमदाबाद 380 054, गुजरात फोन : 079–26858002 वैबसाइट : http://www.ceeindia.org ई–मेल : cee@ceeindia.org
6.	सेन्टर फॉर साइन्स एण्ड ऐन्वायर्नमेंट	पता : 41, तुगलकाबाद इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली– 110 062, भारत फोन : 011–29955124/25, 29956394, 29956401, 29956399 वैबसाइट : http://www.cseindia.org ई–मेल : cse@cseindia.org
7.	सीपीआर ऐन्वायर्नमेंटल ऐजुकेशन सेन्टर (सीपीआरईईसी)	पता : द सी. पी. रामास्वामी अय्यर फाउण्डेशन नं.–1, ऐलडम्स रोड, अलवरपेट, चेन्नई 600 018, तमिलनाडु, फोन : 044–24337023, 24346526, 24349366 वैबसाइट : www.cpreec.org ई–मेल : cpreec@vsnl.com, ecoheritage_cpreec@vsnl.net
8.	एकलव्य	पता : ई–10, बीडीए कॉलोनी, शंकर नगर, शिवाजी नगर, भोपाल 462 016, मध्य प्रदेश, भारत फोन : 0755–267 1017,255 1109 वैबसाइट : http://eklavya.in
9.	एकलव्य इंस्टीट्यूट ऑफ टीचर ऐजुकेशन (ईआई)	पता : एकलव्य ऐजुकेशन फाउण्डेशन, कोर हाउस, ऑफ सी.जी. रोड, एलिसब्रिज, अहमदाबाद–6 फोन : 079–26461629 वैबसाइट : www.eklavya.org ई–मेल : eklavya@eklavya.org
10.	होमी भाभा सेन्टर फॉर साइन्स ऐजुकेशन	पता : श्री एच. सी. प्रधान, टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च, वी.एन. पुरव मार्ग, मानखुर्द, मुंबई, 400 088 फोन : 022–25554712, 25580036 वैबसाइट : www.hbcse.tifr.res.in ई–मेल : postmaster@hbcse.tifr.res.in
11.	इण्डियन साइन्स कांग्रेस ऐसोसिएशन	पता : 14, डॉ. बिरेश गुहा स्ट्रीट, कोलकाता–17 फोन : 033–2287 4530 वैबसाइट : http://sciencecongress.nic.in ई–मेल : iscacal@vsnl.net

क्रमांक	संगठन का नाम	संपर्क
12.	कल्पवृक्ष ऐनवायर्नमेंट ऐक्शन ग्रुप	पता : 134, टावर–10, सुप्रीम एन्क्लेव, मयूर विहार फेज–1, दिल्ली फोन : 011–22753714 वैबसाइट : http://www.kalpavriksh.org
13.	केरल शास्त्र साहित्य परिषद	पता : परिषद भवन, चलप्पुरम पीओ, कोझीकोड– 673 002 केरल, भारत फोन : 0495–2701919, 9447038195 वैबसाइट : http://www.kssp.org.in ई–मेल : gskssp@gmail.com
14.	नेशनल काउंसिल फॉर साइन्स एंड टेक्नोलॉजी कम्यूनिकेशन (एनसीएसटीसी)	पता : विज्ञान और तकनीकी विभाग, तकनीकी भवन, न्यू महरौली रोड, नई दिल्ली– 11001 फोन : 011–26567373, 26962819 वैबसाइट : www.dst.gov.in ई–मेल : dstinfo@nic.in
15.	नवनिर्मिती	पता : नवनिर्मिती, 301, 302, 303, तीसरी मंजिल, ए विंग, प्रियदर्शिनी अपार्टमेंट, पद्मावती रोड, आईआईटी मार्केट गेट, पवई, मुंबई 400 076 फोन : 022–25773215, 25786520 वैबसाइट : www.navnirmiti.org ई–मेल : contact@navnirmiti.org
16.	नफील्ड फाउण्डेशन	पता : 28 बेडफर्ड स्क्वॉयर, लन्दन, डब्ल्यूसी 1 बी 3 जेएस फोन : 020 7631 0566, 020 7580 7434 वैबसाइट : www.nuffieldfoundation.org ई–मेल : info@nuffieldfoundation.org
17.	राजीव गांधी फाउण्डेशन	पता : जवाहर भवन, डॉ. राजेंद्र प्रसाद रोड, नई दिल्ली 110 001, भारत फोन : 011–23755117, 23312456 वैबसाइट : www.rgfindia.org ई–मेल : info@rgfindia.org
18.	स्टेट इंस्टीट्यूट ऑफ साइन्स ऐजुकेशन	पता : एस.आई.एस.ई. (राज्य विज्ञान संस्थान), पी.एस. एम. कैंपस, जबलपुर– 482001 मध्य प्रदेश फोन : 0761–2625776 वैबसाइट : http://sisejbp.nic.in
19.	सूत्रधार	पता : 59/1, थर्ड क्रॉस, 10वां ए मेन, इंदिरा नगर 2 स्टेज, बैंगलोर–560038 फोन : 080–25288545,25215191 वैबसाइट : www.sutradhar.com ई–मेल : sutra@vsnl.com
20.	तमिलनाडु साइन्स फोरम	पता : बालाजी संपथ, सी–2, रत्ना अपार्टमेंट्स, एएच 250, शांति कॉलोनी, अन्नानगर, चेन्नई–600040 तमिलनाडु फोन : 044–26213638 वैबसाइट : bsampatheng.umd.edu
21.	तमिलनाडु स्टेट काउंसिल फॉर साइन्स एण्ड टेक्नोलॉजी	पता : तकनीकी शिक्षा निदेशालय परिसर, चेन्नई–25 फोन : 044–22301428 वैबसाइट : www.tanscst.org ई–मेल : enquiry@tnscst.org
22.	विद्या भवन सोसायटी	पता : फतेहपुरा, उदयपुर, राजस्थान– 313001 फोन : 0294 2450911 वैबसाइट : http://www.vidyabhawan.org ई–मेल : infovidyabhawan.org, vbsudr@yahoo.com
23.	विक्रम ए साराभाई कम्यूनिटी साइन्स सेन्टर	पता : गुजरात विश्वविद्यालय के सामने, नवरंगपुरा, अहमदाबाद– 380 009 फोन : 079–26302085,26302914 वैबसाइट : www.vascsc.org ई–मेल : info@vascsc.org

पुस्तक समीक्षा

श्योरली यू आर जोकिंग, मि. फाइनमैन! ऐडवैन्चर्स ऑफ ए क्यूरियस कैरेक्टर

लेखक रिचर्ड पी फाइनमैन
विन्टेज बुक्स, लन्दन (1992) : 350 पृष्ठ भाषा–अंग्रेज़ी

समीक्षा : नीरजा राघवन

क्या आप यह उम्मीद करेंगे कि एक किशोर वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में आलू तलने से कुछ ज़्यादा कर रहा होगा? यह एक किताब है जो आपको ऐसी चौंका देने वाली अनेक अन्य बातें बताने का वायदा करती है। मैं इसे कम से कम तीन बार पढ़ चुकी हूँ। और हर बार मुझे, यदि ज़्यादा नहीं तो, उतना ही मजा आया है।

इसकी एक खासियत है कि यह कुन्द, अंधेरी–सी प्रयोगशाला में, अटपटी बातें बुदबुदाते, चीज़ों को इधर–उधर करते, अपने में खोये–खोये (और उबाऊ) वैज्ञानिक की घिसी–पिटी छवि को तहस–नहस कर देती है। सच तो यह है कि इसको पढ़कर लगता है कि अपने भरपूर बुद्धि कौशल, हाजिर–जवाबी और जीवन की उमंग के कारण इससे ज़्यादा चमकते, मोहक व्यक्तित्व के धनी लोग बहुत अधिक नहीं हो सकते!

फाइनमैन के भूतपूर्व विद्यार्थी अल्बर्ट आर हिब्ज़ ने अपनी सारगर्भित भूमिका में पुस्तक के मुख्य तत्व को इस तरह व्यक्त किया है: 'वे हमसे भौतिक शास्त्र की बात करते थे, उनके चित्र और समीकरण हमें उनकी समझ में साझेदार बनने में मदद करते थे। उनके होंठों पर मुस्कान और आँखों में चमक का कारण कोई गुप्त चुटकुला न होकर भौतिक शास्त्र ही होता था। भौतिकी का आनन्द! वह आनन्द संक्रामक होता था। हम सौभाग्यशाली हैं कि हमने उस संक्रमण को ग्रहण किया। अब फाइनमैन की शैली में जीवन के आनन्द से रूबरू होने का यहाँ आपके लिए एक अवसर है।'

हाँ, जीवन का आनन्द, आपको भी सराबोर करता है जब आप यह किताब पढ़ते हैं। हर बार जब भी मैं यह किताब पढ़ने बैठी हूँ तो फिर अपनी मेज़ से ऊर्जा से भरी हुई उठी हूँ।

बालक की तरह, भविष्य के इस नोबल पुरुस्कार विजेता के व्यक्तित्व का सबसे उल्लेखनीय पहलू था, उसके आसपास की तमाम चीज़ों में उसकी दिलचस्पी, और उनमें से अधिकांश की जाँच–पड़ताल करने की उसकी असीम ऊर्जा। उदाहरण के लिए, उसे रेडियो सुनते–सुनते सो जाना प्रिय था। इस बात ने उसे अपना खुद का रेडियो बनाने के लिए प्रेरित किया। एक दिन उसने चकित होकर पाया कि वह स्केनेकटाडी से प्रसारित हो रहे एक रेडियो चैनल को न्यूयॉर्क में (जहाँ वह रहता था) प्रसारित होने से एक घण्टा पहले पकड़ सकता था। अतः इस शरारती लड़के ने अपने दोस्तों को ऐसा दर्शाया कि जैसे उसमें भविष्य बताने की शक्तियाँ थीं। जब वे लेटे हुए कोई रेडियो नाटक सुन रहे होते, तो वह चमत्कारी ढंग से अगले दृश्य का अनुमान लगा लेता! खैर, एक चीज़ से दूसरी चीज़ का सिलसिला चल पड़ा (और यह इस मज़ेदार किताब में हर समय होता ही रहता है।) और फाइनमैन मौहल्ले का रेडियो मिस्त्री बन गया। हालाँकि अभी वह लड़का ही था। लोग हमेशा उसे अपना रेडियो सुधारने के लिए बुलाते रहते थे और चकित होते थे कि कैसे वह सिर्फ सोचकर उन्हें सुधार देता था।

> *जब मैं ग्यारह या बारह साल का था तब मैंने अपने घर में एक प्रयोगशाला बनाई। वह एक लकड़ी के खोके में थी जिसमें मैंने पटिये लगाकर कुछ खण्ड बना लिए थे। मेरे पास एक बिजली का चूल्हा था जिस पर मैं हर समय चिकनाई में फ्रेंच फ्राइड आलू (तले हुए आलू के छोटी पतली डण्डी जैसे टुकड़े) तलता रहता था।*
>
> *– रिचर्ड फाइनमैन*

उनके ही शब्दों में: एक बार जब मैं किसी पहेली में उलझता हूँ तो उसे छोड़ नहीं सकता। फाइनमैन इसे अपनी पहेली हल करने की लगन कहते हैं। वे किसी भी उलझन को सुलझाने का मोह नहीं छोड़ पाते थे। चाहे वह माया लोगों की चित्रलिपि हो, या तिजोरियों को खोलने की कोशिश हो, या फिर कोई ज्यामितीय पहेली हो (जो एक बड़े विद्यार्थी ने आगे की गणित की कक्षा से लाकर उसे दी थी)! हाईस्कूल के दौरान मनुष्य को ज्ञात हर पहेली मेरे पास आई होगी। मैं कम्बख्त हर विचित्र पहेली जानता था जिसका लोगों ने आविष्कार किया था।

यदि आप किसी ऐसी किताब की कल्पना कर सकते हैं जिसे पढ़ते हुए आपको उसके रचने वाले दिमाग की हरकत सुनाई देती हो, तो यही वह किताब है। इसमें लेखक का दिमाग किसी हैलीकॉप्टर की तरह तेजी से घनघनाते हुए घूमता हुआ, एक समस्या से दूसरी की ओर उड़ता रहता है। फिर जो उसे रुचती है उस पर मोहक अदा से उतरता है, और उस पर तब तक घूमता रहता है जब तक कि वह सुलझ नहीं जाती। फिर अगली समस्या की ओर उड़ जाता है, चाहे उसका पिछली से कोई भी सम्बन्ध न हो।

ऐसी विलक्षण प्रतिभा के इतने निकट सम्पर्क में आ पाने के ऐसे अवसर सचमुच में दुर्लभ हैं।

जब उसके सामने समय–सीमा से बँधी हुई कोई ऐसी समस्या होती, जिसे दिए गए सीमित समय में पारम्परिक ढंग से हल करना कतई सम्भव नहीं होता, तो फाइनमैन

अपने आप से पूछता: क्या इसे देखने का कोई और तरीका है? यह प्रश्न मेरे मन पर विशेष छाप छोड़ गया। बँधे-बँधाये ढाँचे के बक्से में सोचने के ढंग से बाहर निकलने

को लगाई गई इस छलाँग के पीछे इस लड़के के आत्मविश्वास के साथ वह परम आनन्द भी झलकता है जो उसे पहेलियाँ सुलझाने में मिलता था। अधिकांश सामान्य लोग ऐसी समस्या को सीधे-सीधे ढंग से इतने कम समय में हल करने की कोई सम्भावना न देखकर एकदम इतने असहाय हो जाएँगे कि उन्हें कुछ और सूझेगा ही नहीं।

मन में एक सवाल उठता है कि किसी विलक्षण व्यक्ति के मन में और आम आदमी के मन में, क्या यही भेद है?

लम्बी फब्तियाँ काटने, आलू कतरने या डैस्क क्लर्क की तरह टेलीफोन का उत्तर देने में: फाइनमैन ने हर ऐसे छोटे-मोटे काम में कुछ परिष्कार करने की कोशिश की, ताकि उसे अधिक सक्षमता से किया जा सके। अपनी चौंधिया देने वाली सूझों के बावजूद, फाइनमैन स्वीकार करता है कि: मैंने जाना कि असली दुनिया में कुछ नया करना बहुत कठिन काम है। पर जाहिर है कि इससे हताश होकर उसने कोशिश करना नहीं छोड़ा। फाइनमैन जब बालक था, तब उसके पिता और वह साथ-साथ पक्षियों का अवलोकन करते थे। आहिस्ता-आहिस्ता जिस तरह उसे ध्यान से निरीक्षण करना सिखाया गया – न कि सिर्फ चिड़िया का नाम बताकर आगे बढ़ जाना –

> 'वह चिड़िया देखते हो?', मेरे पिता कहते। 'यह स्पैन्सर्स वार्बलर है।' (मैं जानता था कि उन्हें उसका असली नाम मालूम नहीं था।) 'अच्छा, इटैलियन में यह चुट्टो लैपिट्टिडा है। पोर्तुगीज में यह बोम डा पीडा है। चीनी में यह चुंग-लाँग-टाह है, और जापानी में यह कतानो टाकेडा है। तुम पक्षी का नाम संसार की सारी भाषाओं में जान सकते हो, पर यह कर चुकने के बाद भी तुम पक्षी के बारे में कुछ भी नहीं जानोगे, तुम सिर्फ अलग-अलग जगहों के बारे में जानोगे और वे शब्द जानोगे जिनसे वहाँ के मनुष्य इसे पकारते हैं। इसलिए चलो हम पक्षियों को निहारें और देखें कि वे क्या कर रहे हैं उसी का महत्व है!'
>
> – रिचर्ड फाइनमैन, यह बताते हुए कि कैसे उनके पिता और वे साथ-साथ पक्षियों को देखते थे।

वह बहुत आँखें खोलने वाला है। सम्बन्धित अंश बॉक्स में उद्धृत किया गया है पुस्तक का सबसे सुन्दर अंश उस प्रयोग का वर्णन है, जो उन्होंने प्रिंस्टन विश्वविद्यालय के छात्रावास में रहने के दौरान चींटियों के साथ किया था। यह पढ़ने में बहुत रोचक है। यह, यह भी स्पष्ट करता है (ऐसे ढंग से जैसा शायद किताब की कोई और कहानी नहीं करती) कि कैसे वैज्ञानिक तरीका, किसी साधारण रोज़मर्रा की समस्या में इस्तेमाल किए जाने पर, उसे सुलझाने में मदद कर सकता है।

यह कहना शायद उचित होगा कि आप

- बहुत भाग्यशाली हैं, यदि आपने फाइनमैन के भौतिकी पर व्याख्यानों को आमने-सामने सुना है।
- कुछ कम भाग्यशाली हैं, यदि आपने फाइनमैन के भौतिकी पर व्याख्यानों को पढ़ा है।
- थोड़े अभागे हैं, अगर आपने केवल उनका जीवनवृत्त पढ़ा है, और
- एकदम अभागे हैं, अगर आपने उनका जीवनवृत्त भी नहीं पढ़ा है!

इसलिए, इंतजार मत कीजिए। उठाइए एक प्रति और शुरू हो जाइए!

नीरजा राघवन, उनसे इस पते पर सम्पर्क किया जा सकता है : neeraja@azimpremjifoundation.org

स्मॉल साइन्स सीरीज़: कक्षा 1 से 5 तक के लिए पाठ्यपुस्तकें, अभ्यास पुस्तकेंऔर शिक्षकों की पुस्तकें

पुस्तकों के लेखक:
कक्षा 1 और 2 जयश्री रामदास, आयशा कवलकर एवं सिन्धु मथाई
कक्षा 3 और 4 जयश्री रामदास
कक्षा 5 ज्योत्सना वीजापुरकर

प्रकाशक:
होमी भाभा सेन्टर फॉर साइन्स ऐजुकेशन
टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फन्डामेन्टल रिसर्च, मुम्बई

समीक्षा : उमा हरिकुमार

पिछले कुछ दशकों से पाठ्यक्रम सुधार और नवीनीकरण के प्रयास होते रहे हैं, और उस दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति भी हुई है। लेकिन पूरी व्यवस्था में बाहरी कारणों से आई गिरावट ने इन उपलब्धियों को ढँक दिया है। पाठ्यक्रम के आम सहमति से माने जाने वाले उद्देश्यों और पाठ्यपुस्तकों तथा शिक्षण के तरीकों में उनके वास्तविक रूप से अपनाए जाने के बीच बड़ा फासला है। होमी भाभा करिकुलम तथा स्मॉल साइन्स सीरीज़ की किताबें (पाठ्यपुस्तकें, अभ्यास-पुस्तकें और शिक्षकों की पुस्तकें) इस फासले को पाटने का प्रयास हैं। पाठ्यक्रम का लक्ष्य विद्यार्थियों में उनके आसपास के संसार के बारे में जीवन्त कौतूहल और निरीक्षण तथा जाँच-पड़ताल के द्वारा उत्तर खोजने की इच्छाशक्ति जगाना है। बच्चों के मन को प्रेरित करना, उनकी जिज्ञासा को उकसाना और उनमें वैज्ञानिक स्वभाव पनपाना इसका उद्देश्य है। स्कूल के शुरुआती कुछ वर्ष सीखने के प्रति बच्चे का रवैया बनाने में महत्वपूर्ण होते हैं। इस प्रारम्भिक चरण में हुए अनुभव तय करते हैं कि वे स्कूली शिक्षा को कैसे देखेंगे। क्या वे उसे निष्क्रिय ढंग से ऐसी जानकारी को सोख लेने की तरह देखेंगे जो न रोचक हो, न आपस में सम्बन्धित हो। या कि उसे अपने आसपास के रहस्यों को समझने और खोलने की खोजयात्रा की तरह देखेंगे?

स्मॉल साइन्स सीरीज प्राथमिक स्कूल के बच्चों, मुख्यतया कक्षा 1 से 5 तक के बच्चों के लिए बनाई गई हैं। कक्षा 1 और 2 में लिए गए विषय पर्यावरण अध्ययन से सम्बन्धित हैं। जबकि कक्षा 3, 4 और 5 में प्रमुख रूप से विज्ञान से सम्बन्धित विषय चुने गए हैं, हालाँकि उनमें सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोणों का ध्यान भी रखा गया है। कक्षा 1 से 3 तक की किताबों में विषयों की शुरुआत, क्रमशः बाहर की ओर फैलते हुए, रोज़मर्रा के अनुभवों और आसपास की चीज़ों से की गई है। कक्षा 4 और 5 में मापने की अवधारणाओं का रोचक उपयोग किया गया है।

कक्षा 3 और 4 की पाठ्यपुस्तकें दो जिज्ञासु बच्चों, मिनी और अपू को लेकर एक कहानी बुनती हैं जो करके और सवाल पूछकर बहुत कुछ सीखते हैं। कहानी के बाद का पाठ, विद्यार्थियों को अपने आसपास के संसार का निरीक्षण करने, दिए गए प्रश्नों का उत्तर खोजने और खुद अपने प्रश्न उठाने के लिए प्रोत्साहित करता है। भाषा सरल है। बच्चों को खोजने और करके देखने वाली गतिविधियों में शामिल करने, और निरीक्षण, वर्गीकरण, निष्कर्ष निकालने आदि के द्वारा पहचानने तथा अंग-संचालन के बुनियादी कौशलों को हासिल करने के लिए सुनियोजित प्रयास किया गया है। इनके चित्र बच्चों के मन के अनुरूप हैं, जिनमें डन्डियों से बनी आकृतियाँ और सीधी रेखाओं से बनी तस्वीरें अवधारणाओं को सरलतम ढंग से व्यक्त करती हैं। कक्षा 4 की पाठ्यपुस्तक में पाचन-पथ के चित्र के साथ-साथ एक टमाटर के पचाये जाने का रेखाचित्र है। मुझे यह बहुत सार्थक लगा, क्योंकि बच्चा ऐसी चीज़ के पाचन मार्ग से सहज रूप से जुड़ सकता है जो वह खाता है!

विषयों का सिलसिला इस तरह जमाया गया है कि सामाजिक क्रियाकलापों के प्रति बच्चे की जिज्ञासा जगती है। यह सिलसिला परिवार से शुरू होकर बड़े दायरों की ओर बढ़ता है। पूरे पाठ्यक्रम के दौरान, पाठ्यपुस्तकें और अभ्यास-पुस्तकें बच्चे की दिलचस्पी बनाए रखती हैं। करने के लिए गतिविधियों के साथ-साथ निरीक्षण के लिए भी चीज़ें हैं, जिनके बारे में बच्चे अपने निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

ये किताबें विज्ञान को सिर्फ स्कूल की कक्षा में सीखने की प्रक्रिया के एक अंग की तरह नहीं देखतीं। निश्चित ही ऐसे पाठ्यक्रम के रूप में तो कतई नहीं देखतीं जिसे समय पर पूरा किया जाना है। वे बाहरी संसार से बहुत कुछ कक्षा के परिवेश में ले आती हैं । इससे सीखने वाले को एहसास होता है कि विज्ञान जीवन का बुनियादी भाग है। हमारे सबके जीवन भी एक वैज्ञानिक प्रक्रिया का हिस्सा ही तो हैं! इनमें बच्चों के लिए पाठ्यक्रम के विषयों को उनके रोज़मर्रा के जीवन से जोड़ने के और ज्ञान की खोज पर निकल पड़ने के पर्याप्त अवसर हैं। पाठ्यपुस्तकें और अभ्यास–पुस्तकें, प्राथमिक स्कूल के बच्चों को प्राकृतिक संसार के साथ होने वाले उनके पारस्परिक अनुभवों को व्यवस्थित करने में, और स्पष्टता से व्यक्त करने में मदद करती हैं, तथा इस तरह उनके सीखने में योगदान देती हैं।

पाठ्यक्रम और पुस्तकें किसी चीज़ के बारे में जानकारी देने की धारणा से हटकर, विज्ञान के अध्ययन के लिए आवश्यक कौशल विकसित करने और परिणामस्वरूप वैज्ञानिक पद्धति को समझने पर जोर देती हैं। कक्षा 1 और 2 में भी निरीक्षण करने और उन्हें दर्ज करने पर जोर है। इस प्रकार की गतिविधियाँ रोचक हैं कि पौधों, फूलों, पत्तियों, पत्तियों की किनारियों, फूलों के रंगों, पंखुरियों की संख्या तथा अन्य किन्हीं संरचनाओं का निरीक्षण करो। मापने पर भी बहुत जोर दिया गया है, चाहे वह पौधे का विकास हो, मौसम हो, या बारिश की मात्रा नापने की बात हो। चित्र बनाने और निरीक्षणों को तालिका के रूप में दर्ज करने से, बाद में सांख्यिकीय आँकड़ों के साथ काम करने की नींव पड़ती है।

इनमें चर्चा, ध्यान से सुनना, राय व्यक्त करना, दूसरे लोगों से और उनकी धारणाओं से जानकारी हासिल करना, इन सभी कौशलों पर भी ध्यान दिया गया है। जैसे कि, हो सकता है, यह पता करना कि मच्छरों की वृद्धि को कैसे रोका जा सकता है, या लोगों से पूछना कि उन्हें यात्रा करना क्यों अच्छा लगता है।

पुस्तकों में तमाम ऐसे प्रश्न हैं जो समीक्षात्मक चिंतन प्रक्रिया में मदद करते हैं। उदाहरण के लिए:

H की आकृति बनाने के लिए तुम कौन–सी डन्डियाँ चुनोगे?

ये किताबें कुछ काल्पनिक धारणाओं का भ्रम दूर करने में, और प्रचलित अन्धविश्वासों पर प्रश्न उठाने में भी मदद करती हैं। उदाहरण के लिए, इस प्रश्न पर चर्चा की गई है कि: क्या साँप सचमुच दूध पीते हैं?

पौधे लगाने की गतिविधि के परिणामस्वरूप कक्षा में निष्कर्ष निकलता है कि सभी अनाजों के पौधे विभिन्न प्रकार की घासें हैं। मुझे लगा कि यह परिकल्पनाएँ करने का और निष्कर्ष निकालने का बढ़िया तरीका था। इसमें चीज़ें बनाने और प्रयोग करने के नए उपाय करने के बहुत उदाहरण हैं: जैसे कि वायु दर्शाने के झण्डे बनाना, तालवाद्य यंत्र बनाना, और अन्य अनेक चीज़ें बनाना।

अभ्यास–पुस्तकें

अभ्यास पुस्तकों से कक्षा–कार्य और गृहकार्य की अलग–अलग पुस्तकों की ज़रूरत नहीं रह जाती है। इस तरह नन्हे कन्धों का बोझ कम हो जाता है। अभ्यास–पुस्तकेंकक्षा 3 से 5 तक के लिए बनाई गई हैं। वे पाठ्यपुस्तकों की पूरक का काम करती हैं। बच्चों को प्रयोगों के दौरान किए गए निरीक्षणों को अंकित करने में मदद करती हैं।

प्रत्येक इकाई के हर अध्याय में निरीक्षण करने, दर्ज करने, पता करने, सोचने और उत्तर देने के लिए कुछ प्रश्न हैं। साथ ही तुलना के अभ्यास हैं। शब्द भण्डार बढ़ाने के लिए कविताएँ लिखना, किसी चीज़ के बारे में वाक्य लिखना, और नए शब्दों से वाक्य बनाना, इस तरह के काम हैं। प्रत्येक इकाई के प्रारम्भ में मूल्यांकन पृष्ठ हैं जिनमें सारी बातें आ जाती हैं। शिक्षक के लिए विद्यार्थी के इन सभी पक्षों का मूल्यांकन करना आवश्यक है: उसका निरीक्षण कौशल, रचना करना और तकनीकी कौशल, मौखिक भाषा, लिखित भाषा, मात्रात्मक ढंग से सोचना, गतिविधियाँ करने में उत्साह, धैर्य और एकाग्रता, स्वतंत्र सोच, दूसरे विद्यार्थियों से सहयोग, और दिए गए गृहकार्यों को पूरा करना।

शिक्षकों के लिए पुस्तकें

शिक्षकों की मार्गदर्शिका बहुत विस्तृत है। इसमें सभी आवश्यक जानकारी दी गई है, ताकि वे जिज्ञासु बच्चों को प्रश्न पूछने में मदद कर सकें। कक्षा के भीतर जो भी किया जाना है उसके बारे में तथा मूल्यांकन प्रक्रिया के बारे में स्पष्ट दिशानिर्देश दिए गए हैं। इसमें विद्यार्थियों की वैकल्पिक अवधारणाओं की और उनका कुशलता से निपटारा करने के तरीकों की भी चर्चा है। हर गतिविधि के बारे में बहुत विचार किया गया है और ऐसे तरीके खोजे गए हैं कि उनमें विद्यार्थियों की सक्रिय भागीदारी हो। कहीं भी आदेशात्मक ढंग से कुछ नहीं सुझाया गया है। शिक्षक को स्थानीय स्तर पर मिलने वाली सामग्री, या विषयवस्तु का उपयोग करने की पर्याप्त स्वतंत्रता दी गई है। कक्षा में पूछने के लिए और पाठ को दिलचस्प बनाने के लिए अनेक प्रश्न सुझाये गए हैं।

आगे पढ़ने के लिए पुस्तकों की एक सूची दी गई है जो शिक्षकों के लिए बहुत उपयोगी है। हर विषय का ब्यौरा विस्तार से दिया गया है। इससे शिक्षकों में आत्मविश्वास पनपता है और बेहतर प्रदर्शन करने की

प्रेरणा मिलती है – सचमुच में शिक्षकों के लिए यह मूल्यवान स्रोत है। पाठ्यक्रम की रचना करना, पाठ्यपुस्तकें लिखना और अभ्यास-पुस्तकें तथा शिक्षकों की मार्गदर्शिका तैयार करना – यह सब एक भागीरथी प्रयास है। जयश्री रामदास, ज्योत्सना वीजापुरकर और उनके साथियों ने इस चुनौती भरे कार्य का बीड़ा उठाकर पुस्तकों की एक बहुत रोचक शृंखला का सृजन किया है। ये ऐसी किताबें हैं, जो शायद हर स्कूल में होनी चाहिए, ताकि विज्ञान की कक्षाएँ आनन्ददायी ढंग से सीखने का स्रोत बन सकें। जैसा कि जयश्री स्वयं कहती हैं, स्मॉल साइन्स सीरीज की किताबें पढ़ने के लिए नहीं, बल्कि करने के लिए हैं!

किताबों के बारे में अधिक जानकारी के लिए आप इस वैबसाइट पर जा सकते हैं: http://www.hbcse.tifr.res.in/smallscience इस वैबसाइट से किताबों के अंग्रेज़ी और मराठी संस्करण डाउनलोड किए जा सकते हैं।

उमा हरिकुमार, अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, बंगलौर में ऐकेडमिक्स और पैडागॉजी सलाहकार हैं। उन्हें केन्द्रीय विद्यालय और देश के अन्य कई स्कूलों में गणित और विज्ञान पढ़ाने का 25 वर्ष से भी अधिक का अनुभव है। उनसे इस पते पर सम्पर्क किया जा सकता है : umaharikumaryahoo.com

कार्टून : बलराज के एन, 54, एनएएल लेआउट, ईस्टऐण्ड रोड, चौथा टी ब्लॉक, जयनगर, बैंगलौर 560 041
फोन : 080-2636865/9900722004 वैबसाइट : www.balrajkn.com Email : balrajkngmail.com

अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन
134, डोड्डाकन्नेल्ली, विप्रो कॉरपोरेट ऑफिस के बाजू में, सरजापुर रोड, बंगलौर 560 035, भारत
दूरभाष : 91-80-6614900/01/02 फैक्स : 91-80-66144903 ईमेल : learningcurveazimpremjifoundation.org
वैबसाइट : www.azimpremjifoundation.org